यामा

महादेवी

भारती-भण्डार

इलाहाबाद

ग्रन्थ-संख्या—१५६

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस,
इलाहाबाद

तृतीय संस्करण
संवत् २००८
मूल्य १।)

मुद्रक—
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

अपनी बात

यामा में मेरे अन्तर्जगत् के चार यामों का छायाचित्र है। ये याम दिन के हैं या रात के यह कहना मेरे लिये असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। यदि ये दिन के हैं तो इन्होंने मेरे हृदय को श्रम से क्लान्त बना कर विश्राम के लिये आकुल नहीं बनाया और यदि रात के हैं तो इन्होंने अन्धकार में मेरे विश्वास को खोने नहीं दिया; अतएव मेरे निकट इनका मूल्य समान है और समान ही रहेगा।

समय को नापने की जो परिपाटी है उसके अनुसार नीहार से लेकर सान्ध्यगीत तक का समय एक युग से भी अधिक है। तब से संसार कितना बढ़ चुका है इसका मुझे ज्ञान है और मेरा जीवन कितना चल चुका है इसका मुझे अनुभव है; परन्तु जीवन के उस तुतले उपक्रम से लेकर अब तक मेरा मन अपने प्रति विश्वासी ही रहा है। मार्ग चाहे जितना अस्पष्ट रहा, दिशा चाहे जितनी कुहराच्छन्न रही, परन्तु भटकने, दिग्भ्रान्त होने और चली हुई राह में पग पग गिन कर पश्चात्ताप करते हुए लौटने का अभिशाप मुझे नहीं मिला है। मेरी दिशा एक और मेरा पथ एक रहा है; केवल इतना ही नहीं वे प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर होते गये हैं। उस समय के अज्ञातनामा भाव और विश्वास प्रयोग की अनेक कसौटियों पर कसे जाकर, अनुभव की सहस्र ज्वालाओं में तपाये जाकर केवल नाम पा गये हैं। उनकी आत्मा वही रही इसमें मुझे सन्देह नहीं।

बचपन से लेकर सन् २४ तक के अपने प्रयासों का परिचय देना आज सम्भव नहीं, क्योंकि उस समय लिखने और खोने के अतिरिक्त उनकी कोई उपयोगिता मुझे ज्ञात नहीं थी। नीहार में सबसे पुरानी रचना सम्भवतः 'उस पार' है। उसकी सहज भाव से लिखी—

'विसर्जन ही है कर्णधार
वही पहुँचा देगा उस पार'

आदि पंक्तियाँ आज भी मेरे हृदय के उतनी ही निकट हैं जितनी तब थीं। मानव को मानवता की तुला पर गुरु होने के लिये स्वार्थ की दृष्टि से कितना हल्का होना पड़ता है, यह प्रश्न इतने दीर्घकाल में अनुभव के लम्बे पथ को पार कर स्वयं उत्तर बन गया है; परन्तु इसके पहले रूप में निहित सत्य की मुझे फिर नवीन रूप में प्राणप्रतिष्ठा नहीं करनी पड़ी।

इन रचनाओं के सम्बन्ध में ज्ञातव्य समझ कर जो कुछ रश्मि और सान्ध्यगीत में कह चुकी हूँ उसमें मुझे आज भी विश्वास है। इस युग में अपने प्रति भी विश्वास बचा रखने का क्या मूल्य है इसे मेरा हृदय ही नहीं मस्तिष्क भी जानता है। भार तो विश्वास का भी होता है और अविश्वास का भी; परन्तु एक हमारे सजीव शरीर का भार है जो हमें ले चलता है और दूसरा सजीव शरीर पर रखे हुए जड़ पदार्थ का जिसे हम ले चलते हैं।

इन रचनाओं में यदि नवीनता होती तो दूसरों को इनके सम्बन्ध में कुछ सुनने की उत्सुकता होती और यदि मेरे दृष्टिकोण को कोई नवीन दिशा मिल गई होती तो उसे स्पष्ट करने की मुझे स्वयं आकुलता होती; परन्तु इन दोनों कारणों के अभाव में मैं पिछला कथन ही दोहराये दे रही हूँ।

१७–८–३९

भाग्य से मैं वह समृद्ध प्रवासी नहीं हूँ जिसके आशातीत विभूति लेकर घर लौटने पर परिचित भी अपरिचित के समान प्रश्न कर बैठते हैं 'क्या तुम वही हो'। प्रत्युत् मेरी स्थिति उस सम्बलहीन वामन जैसी है जो अपनी सारी लघुता समेट कर द्वार पर बैठा बैठा ही नया पुराना हो जाता है।

नीहार के [illegible] में मैं [illegible] भारती-मन्दिर की जिस [illegible] सीढ़ी पर [illegible] खड़ी हुई थी अब तक वहीं हूँ, क्योंकि न कभी पैरों में अन्तिम सोपान तक पहुँचने की शक्ति आई और न उत्सुक हृदय ने लौट जाने की प्रेरणा ही पाई। इन असंख्य ऊँची सीढ़ियों पर आने जाने वाले पुजारियों ने निरन्तर देखते देखते ही मेरे विषय में अनेक प्रश्नों का समाधान कर लिया होगा; उनका कुतूहल अति परिचय-जनित उपेक्षा में परिवर्तित हो चुका होगा। अब मैं अपने विषय में कौन सी [illegible] कहूँ।

[illegible] न ही कुछ स्फुट गीत संग्रहीत हैं। नीहार के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहलमिश्रित वेदना उमड़ आती थी जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है। रश्मि को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिन्तन प्रिय था। [illegible] और सान्ध्यगीत मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख दुःख में सामञ्जस्य का अनुभव करने लगा। पहले बाहर खिलने वाले फूल को देख कर मेरे रोम रोम में ऐसा पुलक दौड़ जाता था मानो वह मेरे ही हृदय में खिला हो; परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव में [illegible] वेदना भी थी। फिर [illegible] अनुभूति ही चिन्तन का [illegible] और अन्त में मेरे मन ने न जाने कैसे उस बाहर-भीतर में एक सामञ्जस्य सा ढूँढ लिया है जिसने सुख दुःख को इस प्रकार बुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।

मनुष्य के सुख-दुःख जिस प्रकार चिरन्तन हैं उनकी अभिव्यक्ति भी उतनी ही चिरन्तन रही है; परन्तु यह कहना कठिन है कि उन्हें व्यक्त करने के साधनों में प्रथम कौन था।

सम्भव है जिस प्रकार प्रभात की सुनहली रश्मि छूकर चिड़िया आनन्द में चहचहा उठती है और [illegible] घिरता देख कर मयूर नाच उठता है उसी प्रकार मनुष्य ने भी पहले पहले अपने भावों का प्रकाशन ध्वनि और गति द्वारा ही

किया हो। विशेष कर स्वर-सामञ्जस्य में बँधा हुआ गेय काव्य मानव-हृदय के कितना निकट है यह उदात्त अनुदात्त स्वरों में बँधे वेदगीत तथा अपनी मधुरता के कारण प्राणों में समा जाने वाले प्राकृत पदों के अधिकारी हम भली भाँति समझ सके हैं।

प्राचीन हिन्दी साहित्य का भी अधिकांश गेय है। तुलसी का इष्ट के प्रति विनीत आत्म-निवेदन गेय है, कबीर का बुद्धिगम्य तत्वनिदर्शन संगीत की मधुरता में बसा हुआ है, सूर के कृष्ण-जीवन का विखरा इतिहास भी गीतिमय है और मीरा की [illegible] पदावली तो सारे गीति-जगत् की सम्राज्ञी ही कही जाने योग्य है।

सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्थाविशेष का गिने चुने शब्दों में स्वरसाधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। इसमें कवि को संयम की परिधि में बँधे हुए जिस [illegible] की आवश्यकता होती है वह सहज प्राप्य नहीं, कारण हम प्रायः भाव की [illegible] में कला की सीमा लाँघ जाते हैं और उसके उपरान्त भाव के संस्कारमात्र में मर्मस्पर्शिता का शिथिल हो जाना अनिवार्य है। [illegible] रेक की अभिव्यक्ति आर्त्त क्रन्दन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है जिसमें संयम का नितान्त अभाव है। उसकी अभिव्यक्ति नेत्रों के सजल हो जाने में भी है, जिसमें संयम की अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत संयत हो जाने की सम्भावना रहती है। उसका प्रकाशन एक दीर्घ निश्वास में भी है जिसमें संयम की पूर्णता भावातिरेक को पूर्ण नहीं रहने देती और उसका प्रकटीकरण निस्तब्धता द्वारा भी हो सकता है जो निष्क्रिय बन जाती है। वास्तव में गीत के कवि को आर्त्त क्रन्दन के पीछे छिपे दुखातिरेक को दीर्घ निश्वास में छिपे हुए संयम से बाँधना होगा तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा। गीत यदि दूसरे का इतिहास न कह कर वैयक्तिक सुख-दुःख ध्वनित कर सके तो [illegible] विस्मय की वस्तु बन जाती है इसमें सन्देह नहीं। मीरा के हृदय में बैठी हुई नारी और विरहिणी के लिये भावातिरेक सहज प्राप्य था, उसके बाह्य राजरानीपन और आन्तरिक साधना में संयम के लिये पर्याप्त अवकाश था। इसके अतिरिक्त वेदना भी आत्मानुभूत थी, अतः उसका 'हेली मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाने कोय' सुन कर यदि हमारे हृदय का तार तार उसी ध्वनि को दोहराने लगता है, रोम रोम उसकी वेदना का स्पर्श कर लेता है तो यह कोई [illegible] बात नहीं। सूर का संयम भावों की कोमलता और भाषा की मधुरता के उपयुक्त ही है, परन्तु कथा इतनी परायी है कि हम बहने की इच्छा मात्र लेकर उसे सुन सकते हैं बहते नहीं और प्रातःस्मरणीय गोस्वामी जी के विनय के पद तो आकाश की मन्दाकिनी कहे जा सकते हैं, हमारी कभी गन्दली कभी स्वच्छ वेगवती सरिता नहीं। मनुष्य की चिरन्तन अपूर्णता का ध्यान कर उनके पूर्ण इष्ट के सन्मुख हमारा मस्तक श्रद्धा से, नम्रता से नत हो जाता है; परन्तु हृदय कातर क्रन्दन नहीं कर उठता। इसके विपरीत कबीर के रहस्य भरे पद हमारे हृदय को स्पर्श कर सीधे बुद्धि से टकराते हैं। अधिकतर हममें उनके विचार ध्वनित हो उठते हैं, भाव नहीं जो गीत का लक्ष्य है।

हिन्दी काव्य का वर्तमान नवीन युग गीति-प्रधान ही कहा जायगा। हमारा व्यस्त और व्यक्तिप्रधान जीवन हमें काव्य के किसी अंग की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही देना नहीं चाहता। आज हमारा हृदय ही हमारे लिये संसार है। हम अपनी प्रत्येक साँस का इतिहास लिख रखना चाहते हैं, अपनी प्रत्येक कम्पन को अंकित कर लेने के लिये उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिये विकल हैं। सम्भव है यह उस युग की प्रतिक्रिया हो जिसमें कवि का आदर्श अपने विषय में कुछ न कह कर संसार भर का इतिहास कहना था; हृदय की उपेक्षा कर शरीर को आदृत करना था।

इस युग के गीतों की एकरूपता में भी ऐसी विविधता है जो उन्हें बहुत काल तक सुरक्षित रख सकेगी। इनमें कुछ गीत मलयसमीर के झोंके के समान हमें बाहर से स्पर्श कर अन्तरतम तक सिहरा देते हैं, कुछ अपने दर्शन से बोझिल पंखों द्वारा हमारे जीवन को सब ओर से छू लेना चाहते हैं, कुछ किसी अलक्ष्य डाली पर छिप कर बैठी हुई कोकिल के समान हमारे ही किसी भूले स्वप्न की कथा कहते रहते हैं और कुछ मन्दिर के पूत धूप-धूम के समान हमारी दृष्टि को धुंधला परन्तु मन को सुरभित किये बिना नहीं रहते।

प्रकाश-रेखाओं के मार्ग में बिखरी हुई बदलियों के कारण जैसे एक ही विस्तृत आकाश के नीचे हिलोरें लेने

वाली जलराशि में कहीं छाया और कहीं आलोक का आभास मिलने लगता है उसी प्रकार हमारी एक ही काव्यधारा अभिव्यक्ति की भिन्न शैलियों के अनुसार भिन्नवर्णी हो उठी है।

छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुःख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महा-प्राण बन गई; अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के [illegible] का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलायें अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अन्धकार और उज्वल विद्युत-रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चञ्चलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं। जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अंग एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा।

परन्तु इस सम्बन्ध से मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी, क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग-जनित आत्म-विसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसीसे इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया। रहस्यवाद, नाम के अर्थ में छायावाद के समान नवीन न होने पर भी प्रयोग के अर्थ में विशेष प्राचीन नहीं। प्राचीन काल के दर्शन में इसका अंकुर मिलता अवश्य है, परन्तु इसके रागात्मक रूप के लिये उसमें स्थान कहाँ! वेदान्त के द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि या आत्मा की लौकिकी तथा पारलौकिकी सत्ता विषयक मत मतान्तर मस्तिष्क से अधिक सम्बन्ध रखते हैं, हृदय से नहीं, क्योंकि वही तो शुद्ध बुद्ध चेतन को विकारों में लपेट रखने का एकमात्र साधन है। योग का रहस्यवाद इन्द्रियों को पूर्णतः वश में करके आत्मा का कुछ विशेष साधनाओं और अभ्यासों के द्वारा इतना ऊपर उठ जाना है जहाँ वह शुद्ध चेतन से एकाकार हो जाता है। सूफीमत के रहस्यवाद में अवश्य ही प्रेमजनित आत्मानुभूति और चिरन्तन प्रियतम का विरह समाविष्ट है, परन्तु साधनाओं और अभ्यासों में वह भी योग के समकक्ष रखा जा सकता है और हमारे यहाँ कबीर का रहस्यवाद यौगिक क्रियाओं से युक्त होने के कारण योग, परन्तु आत्मा और परमात्मा के मानवीय प्रेम-सम्बन्ध के कारण वैष्णव युग के उच्चतम कोटि तक पहुँचे हुए प्रणयनिवेदन से भिन्न नहीं।

आज गीत में हम जिसे नये रहस्यवाद के रूप में ग्रहण कर रहे हैं वह इन सबकी विशेषताओं से युक्त होने पर भी उन सबसे भिन्न है। उसने परा विद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य-भाव-सूत्र में बाँध कर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को आलम्बन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका। इसमें सन्देह नहीं कि इस वाद ने रूढ़ि बन बहुतों को भ्रम में डाल दिया है; परन्तु जिन इने-गिने व्यक्तियों ने इसे वास्तव में समझा उन्हें इस नीहारलोक में भी गन्तव्य मार्ग स्पष्ट दिखाई दे सका। इस काव्यधारा की अपार्थिव पार्थिवता और साधना की न्यूनता ने सहज ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर लिया है; अतः यदि इसका रूप कुछ विकृत होता जा रहा हो तो आश्चर्य की बात नहीं। हम यह समझ नहीं सके हैं कि रहस्यवाद आत्मा का गुण है, काव्य का नहीं। काव्य की उत्कृष्टता किसी विशेष विषय पर निर्भर नहीं; उसके लिये हमारे हृदय को ऐसा पारस होना चाहिये जो सबको अपने स्पर्श मात्र से सोना कर दे। एक पागल से चित्रकार को जब फटा कागज, टूटी तूलिका और धब्बे डाल देने वाला रंग मिल जाता है तब क्षण भर में वह निर्जीव कागज जीवित हो उठता है, रंगों में कल्पना साकार हो उठती है, रेखाओं में जीवन प्रतिबिम्बित हो उठता है तथा उस पार्थिव वस्तु के अपार्थिव रूप के साथ हम हँसते हैं, रोते हैं और उसे मानवीय सम्बंधों

में बांध रखना चाहते हे । एक निरर्थक झनझन से पूर्ण टूटे एकतारे के जर्जर तारों में गायक की कुशल उंगलियां उलझ जाने पर उन्हीं तारों में हमारे सुख-दुःख, रो-हँस उठते हैं, सीमा के सारे संकीर्ण बन्धन छिन्न-भिन्न होकर बह जाते हैं और हम किसी अज्ञात सौन्दर्य-लोक में पहुँच कर चकित-से मुग्ध-से उसे सदा सुनते रहने की इच्छा करने लगते हैं। निरंतर पैरों से ठुकराये जाने वाले कुरूप पाषाण से शिल्पी के कुशल हाथ का स्पर्श होते ही वही पाषाण मोम के समान अपना आकार बदल डालता है, उसमें हमारे सौन्दर्य के, शक्ति के आदर्श जाग उठते हैं और तब उसी को हम देवता के समान प्रतिष्ठित कर चन्दन फूल से पूज कर अपने को धन्य मानते हैं। जल का एक रंग भिन्न भिन्न रंगवाले पात्रों में जैसे अपना रंग बदल लेता है उसी प्रकार चिरन्तन सुख-दुःख हमारे हृदयों की सीमा और रंग के अनुसार बन कर प्रकट होते हैं। हमें अपने हृदयों की सारी अभिव्यक्तियों को एक ही रूप देने को आकुल न होना चाहिये, क्योंकि यह प्रयत्न हमें किसी भी दिशा में सफल न होने देगा।

मेरे गीत मेरा आत्मनिवेदन मात्र हैं—उनके विषय में कुछ कह सकना मेरे लिये सम्भव नहीं। इन्हें मैं अपनी अकिंचन भेंट के अतिरिक्त कुछ नहीं मानती।

अपने चित्रों के विषय में कहते हुए मुझे जिस संकोच का अनुभव हो रहा है वह भी केवल शिष्टाचार-जनित न होकर अपनी अपात्रता के यथार्थ ज्ञान-जनित है। मैं सत्य अर्थ में कोई चित्रकार नहीं हूँ, हो सकने की सम्भावना भी कम है; परन्तु शैशव से ही रंग और रेखाओं के प्रति मेरा बहुत कुछ वैसा ही आकर्षण रहा है जैसा कविता के प्रति। मेरा प्रत्यक्ष ज्ञान मेरी कल्पना के पीछे सदा ही हाथ बांध कर चलता रहा है, इसीसे जब रातदिन होने का प्राकृतिक कारण मुझे ज्ञात न था तभी सन्ध्या से रात तक बदलने वाले आकाश के रंगों में मुझे परियों का दर्शन होने लगा था, जब मेघों के बनने का क्रम मेरे लिये अज्ञेय था तभी उनके वाष्पतन में दिखाई देनेवाली आकृतियों का मैं नामकरण कर चुकी थी और जब मुझे तारों का हमारी पृथ्वी से बड़ा या उसके समान होना बता दिया गया था तब भी मैं रात को अपने आंगन में 'आओ, प्यारे तारे आओ, मेरे आंगन में बिछ जाओ' गा गाकर उन महान् लोकों को नीचे बुलाने में नहीं हिचकिचाती थी। रात को स्लेट पर गणित के स्थान में तुक मिला कर और दिन में मा या चाची की सिन्दूर की डिबिया चुरा कर कोने में फर्श पर रंग भरना और दण्ड पाना मुझे अब तक स्मरण है। कह नहीं सकती अब वे वयोवृद्ध चित्रकार जिनके निकट मैंने रेखाओं का अभ्यास किया था होंगे या नहीं। यदि होंगे तो सम्भव है उन्हें वह विद्यार्थिनी न भूली हो जो एक रेखा खींच कर तुरन्त ही उसमें भरने के लिए रंग माँगती थी और जब वे रंग भरना सिखाने लगे तब जो नियम से उनके सामने भरे हुए रंगों पर रात को दूसरा रंग फेर कर चित्र ही नष्ट कर देती थी।

इसके उपरान्त का इतिहास तो पाठ्य-पुस्तकों, परीक्षाओं और प्रमाणपत्रों का इतिहास है जिसे कविता ही सरस बनाती रही। मेरी रंगीन कल्पना के जो रंग शब्दों में न समाकर छलक पड़े या जिनकी शब्दों में अभिव्यक्ति मुझे पूर्ण रूप से सन्तोष न दे सकी वे ही तूलिका के आश्रित हो सके हैं, इसीसे इन रंगों के संघात का स्वतः पूर्ण होना संभव नहीं। यह तो मेरे भावातिरेक में उत्पन्न कविता-प्रवाह से निकल कर एक भिन्न दिशा में जाने वाली शाखामात्र है, अतः दोनों गुण दोष में समान ही रहेंगे—यदि एक का उद्गम और वातावरण धुंधला है तो दूसरे का भी वैसा ही होना अनिवार्य-सा है, यदि एक वस्तुजगत् को विशेष दृष्टिकोण से देखता और विशेष रूप में ग्रहण करता है तो दूसरे का दृष्टिकोण भी कुछ भिन्न और ग्रहण करने की शक्ति कुछ विपरीत न हो सकेगी।

मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि चित्रकार के लिये कवि होना जितना सहज हो सकता है उतना कवि के लिये चित्रकार हो सकना नहीं। कला जीवन में जो कुछ सत्यं शिवं सुन्दरम् है सबका उत्कृष्टतम विकास है, परन्तु इस उत्कृष्टतम विकास में भी श्रेणियाँ हैं। जो कला भौतिक उपकरणों से जितनी अधिक स्वतंत्र हो कर भावों की अधिकाधिक अभिव्यंजना में समर्थ हो सकेगी वह उतनी ही अधिक श्रेष्ठ समझी जायगी। इस दृष्टि से भौतिक आधार की अधिकता और भावव्यञ्जना की अपेक्षाकृत न्यूनता से युक्त वास्तुकला हमारी कला का प्रथम सोपान और भौतिक

सामग्री के अभाव और भावव्यञ्जना की अधिकता से पूर्ण काव्यकला उसका सबसे ऊँचा अन्तिम सोपान मानी जायगी। चित्रकला वास्तुकला की अपेक्षा भौतिक आधार से स्वतन्त्र होने पर भी काव्यकला की अपेक्षा अधिक परतन्त्र है, कारण वह देश के ऐसे कठिनतम बन्धन में बंधी है जिसमें उसे चित्रकला बने रहने के लिये सदा ही बंधा रहना होगा। स्वतन्त्र वातावरण का विहारी विहग अपने स्वभाव को बन्धनों के उपयुक्त उतनी सरलता से नहीं बना पाता जितनी सुगमता तथा सहज भाव से बन्धनों का पक्षी उन्मुक्त वातावरण की पात्रता प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक कवि चित्र के, लम्बाई चौड़ाई से युक्त देश के बन्धनों और भावों की अपेक्षाकृत सीमित व्यञ्जना से क्षुब्ध-सा हो उठता है। न वह इन बन्धनों को तोड़ देने में समर्थ है और न काव्य के स्वतन्त्र वातावरण को भूल सकता है।

इसके अतिरिक्त एक और भी कारण है जो चित्रकार को कवि से एकाकार न होने देगा। चित्रकला निरीक्षण और कल्पना तथा कविता भावातिरेक और कल्पना पर निर्भर हैं। चित्रकार प्रत्यक्ष और कल्पना की सहायता से जो मानसिक चित्र बना लेता है उसे बहुत काल व्यतीत हो जाने पर भी रेखाओं में बाँध कर रंग से जीवित कर देने की वैसी ही क्षमता रखता है; परन्तु कवि के लिये भावातिरेक और कल्पना की सहायता से किसी लोक की सृष्टि कर उसे बहुत काल के उपरांत उसी तन्मयता से, उसी तीव्रता से व्यक्त करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होगा। अवश्य ही यह पद्यबद्ध इतिहास के समान वर्णनात्मक रचनाओं के विषय में सत्य नहीं, परन्तु व्यक्तिप्रधान भावात्मक काव्य का वही अंश अधिक से अधिक अन्तस्तल में समा जाने वाला, अनेक भूले सुखदुखों की स्मृतियों में प्रतिध्वनित हो उठने के उपयुक्त और जीवन के लिये कोमलतम स्पर्श के समान होगा, जिसमें कवि ने गतिमय आत्मानुभूत भावातिरेक को संयत रूप में व्यक्त कर उसे अमर कर दिया हो या जिसे व्यक्त करते समय वह अपनी साधना द्वारा किसी बीते क्षण की अनुभूति की पुनरावृत्ति करने में सफल हो सका हो। केवल संस्कारमात्र भावात्मक कविता के लिये सफल साधन नहीं है और न किसी बीती अनुभूति की उतनी ही तीव्र मानसिक पुनरावृत्ति ही सबके लिये सब अवस्थाओं में सुलभ मानी जा सकती है।

बालक अपना सक्रिय जीवन जिस प्रत्यक्ष और उसके अनुकरण से आरम्भ करता है वही निरीक्षण और अनुकरण पर्याप्त मात्रा में चित्रकार के अथ में समाहित हैं। परन्तु यदि विचार कर देखा जाय तो कवि इन सीढ़ियों से ऊपर पहुंचा हुआ जान पड़ेगा, क्योंकि इन व्यापारों से उत्पन्न सुख-दुखमयी अनुभूति को यथार्थ व्यक्त करने की उत्कंठा उसका प्रथम पाठ है। इसमें सन्देह नहीं कि चित्रमय काव्य हो सकता है और काव्यमय चित्र; परन्तु प्रायः सफल चित्रकार असफल कवि का और सफल कवि असफल चित्रकार का शाप साथ लाता रहा है।

मैं तो किसी भी दिशा में सफल नहीं हूँ, अतः मेरे शाप को भी दुगुना होना चाहिये। अपने व्यस्त जीवन से कुछ क्षणों को छीन कर जैसे-तैसे कुछ लिखते-लिखते मेरे स्वभाव ने मुझे चित्रकला के लिये नितान्त अनुपयुक्त बना दिया है, कारण जितने समय में मैं तुक मिला लेती हूँ उतने ही समय में चित्र समाप्त कर देने के लिये आकुल हो उठती हूँ। ऐसी दशा में अपनी इन विचित्र कृतियों को हिन्दी संसार के सन्मुख रखते हुए मुझे केवल संकोच है और क्या कहूं! संन्तोष इतना ही है कि यह मेरी है और मैं हिन्दी संसार से अविच्छिन्न सम्बन्ध में बंधी हूँ।

१०–८–३६

अपने विषय में कुछ कहना प्रायः बहुत कठिन हो जाता है, क्योंकि अपने दोष देखना अपने आपको अप्रिय लगता है और उनको अनदेखा कर जाना औरों को—

'रश्मि' में मेरी कुछ नई और कुछ पुरानी रचनाएँ संगृहीत हैं। इसके विषय में मैं क्या कहूँ। वह मेरे इतने निकट है कि उसका वास्तविक मूल्य आँकना मेरे लिये सम्भव नहीं; आँखों में देखने की शक्ति होने पर भी उनमें मिला कर रखी हुई वस्तु कहीं स्पष्ट दिखाई देती है!

हाँ इतना कहने में मुझे संकोच न होगा कि मैं स्वयं अनित्य होकर भी जिन प्रिय वस्तुओं की नित्यता की कामना करने से नहीं हिचकती यह उन्हीं में से एक है।

जैसे मेरे बिना जाने हुए ही मेरे स्वभाव में अनेक गुण-दोष आ गये हैं उसी प्रकार कुछ लिखते रहने की दुर्बलता भी उत्पन्न हो गई है। कब और कैसे—यह तो मैं स्वयं ही नहीं जानती, केवल इतना कह सकती हूँ लिखने में सुख मिलता है, न लिखने से जीवन में एक अभाव-सा प्रतीत होता है। समय के अनुसार विचारों में, विचारों के अनुसार रचनाओं में जो परिवर्तन आते गये हैं उनके लिये भी मुझे कभी प्रयत्न नहीं करना पड़ा। याद नहीं आता जब मैंने किसी विषय विशेष या 'वाद' विशेष पर सोच कर कुछ लिखा हो।

मेरे लिये तो मनुष्य एक सजीव कविता है। कवि की कृति तो उस सजीव कविता का शब्दचित्र मात्र है जिससे उसका व्यक्तित्व और संसार के साथ उसकी एकता जानी जाती है। वह एक संसार में रहता है और उसने अपने भीतर एक और इस संसार से अधिक सुन्दर, अधिक सुकुमार संसार बसा रखा है। मनुष्य में जड़ और चेतन दोनों एक प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध रहते हैं। उसका बाह्याकार पार्थिव और सीमित संसार का भाग है और अन्तस्तल अपार्थिव असीम का—एक उसको विश्व से बाँध रखता है तो दूसरा उसे कल्पना द्वारा उड़ाता ही रहना चाहता है।

जड़ चेतन के बिना विकासशून्य है और चेतन जड़ के बिना आकारशून्य। इन दोनों की क्रिया और प्रतिक्रिया ही जीवन है। चाहे कविता किसी भाषा में हो चाहे किसी वाद के अन्तर्गत, चाहे उसमें पार्थिव विश्व की अभिव्यक्ति हो चाहे अपार्थिव की और चाहे दोनों के अविछिन्न सम्बन्ध की, उसके अमूल्य होने का रहस्य यही है कि वह मनुष्य के हृदय से प्रवाहित हुई है। कितनी ही भिन्न परिस्थितियों में होने पर भी हम हृदय से एक ही हैं; यही कारण है कि दो मनुष्यों के देश, काल, समाज में समुद्र के तटों जैसा अन्तर होने पर भी वे एक दूसरे के हृदयगत भावों को समझने में समर्थ हो सकते हैं। जीवन की एकता का यह छिपा हुआ सूत्र ही कविता का प्राण है। जिस प्रकार वीणा के तारों के भिन्न-भिन्न स्वरों में एक प्रकार की एकता होती है जो उन्हें एक साथ मिल कर चलने की और अपने साम्य से संगीत की सृष्टि करने की क्षमता देती है उसी प्रकार मनुष्य के हृदयों में एकता छिपी हुई है। यदि ऐसा न होता तो विश्व का संगीत ही बेसुरा हो जाता।

फिर भी न जाने क्यों हम लोग अलग अलग छोटे छोटे दायरे बना कर उन्हीं में बैठे बैठे सोचा करते हैं कि दूसरा हमारी पहुँच से बाहर है। एक कवि विश्व का या मानव का बाह्य सौन्दर्य देख कर सब कुछ भूल जाता है, सोचता है उसके हृदय से निकला हुआ स्वर अलग एक संगीत की सृष्टि करेगा; दूसरा विश्व की आन्तरिक वेदना-बहुल सुषमा पर मतवाला हो उठता है, समझता है उसके हृदय से निकला हुआ स्वर सबसे अलग एक निराले संगीत की सृष्टि कर लेगा; परन्तु वे नहीं सोचते कि उन दोनों के स्वर मिल कर ही विश्व-संगीत की सृष्टि कर रहे हैं।

वर्तमान, आकाश से गिरी हुई सम्बन्धरहित वस्तु न होकर भूतकाल का ही बालक है जिसके जन्म का रहस्य भूत-काल में ही ढूंढा जा सकता है। हमारे 'छायावाद' के जन्म का रहस्य भी ऐसा ही है। मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है। स्वच्छन्द घूमते-घूमते थक कर वह अपने लिये सहस्र बन्धनों का आविष्कार कर डालता है और फिर बन्धनों से ऊब कर उनको तोड़ने में अपनी सारी शक्तियाँ लगा देता है।

छायावाद के जन्म का मूलकारण भी मनुष्य के इसी स्वभाव में छिपा हुआ है। उसके जन्म से प्रथम कविता के बन्धन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय

अपनी अभिव्यक्ति के लिये रो उठा। स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उन मानव-अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त ही लगता है।

इन छायाचित्रों को बनाने के लिये और भी कुशल चितेरों की आवश्यकता होती है, कारण उन चित्रों का आधार छूने या चर्मचक्षु से देखने की वस्तु नहीं। यदि वे मानव, हृदय में छिपी हुई एकता के आधार पर उनकी संवेदना का रंग चढ़ा कर न बनाये जायँ तो वे प्रेत-छाया के समान लगने लगें या नहीं इसमें मुझे कुछ ही सन्देह है।

जो कुछ हो. मेरा विश्वास है कि यदि हृदयवाद में हम बाह्य विश्व का अस्तित्व एकदम भूल जावें तो सम्भव है कि कुछ दिनों बाद हम अपने बाह्य रूप की अभिव्यक्ति के लिये उतने ही आकुल हो उठें जितने पहले हृदय के लिये थे।

छायावाद के भाग्य में क्या है इसका निर्णय समय करेगा जिसकी गति में कोई भी हल्की, तुच्छ वस्तु नहीं ठहर पाती।

छायावाद के अन्तर्गत न जाने कितने वाद हैं। मेरी रचना का कहाँ स्थान है यह मैं नहीं जानती---जहाँ जिसका जी चाहे रखे। कविता लिखने का ध्येय उसे किसी वाद के अन्तर्गत रखना ही तो नहीं है जो मैं चिन्ता करूँ!

अपने दुःखवाद के विषय में भी दो शब्द कह देना आवश्यक जान पड़ता है। सुख और दुख के धूपछाहीं डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिये किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार साधारणतः जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है; उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।

इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुःखात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।

अवश्य ही इस दुःखवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा, परन्तु आज तक उसमें पहले जन्म के कुछ संस्कार विद्यमान हैं जिनसे मैं उसे पहचानने में भूल नहीं कर पाती---

दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूंद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुःख सबको बाँट कर---विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि की मोक्ष है।

मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं। एक वह जो मनुष्य के संवेदनाशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।

अपने भावों का सच्चा शब्दचित्र अंकित करने में मुझे प्रायः असफलता ही मिली है, परन्तु मेरा विश्वास है कि असफलता और सफलता की सीढ़ियों द्वारा ही मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँच पाता है।

इससे मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि मैं जीवन भर आँसू की माला ही गूंथा करूँगी और सुख का वैभव जीवन के एक कोने में बन्द पड़ा रहेगा।

परिवर्तन का ही दूसरा नाम जीवन है। जिस प्रकार जीवन के उषः काल में मेरे गुरुओं का आधार पा करती हुई विश्व के कण कण से एक करुणा की धारा उमड़ पड़ी है उसी प्रकार सन्ध्या काल में जब लम्बी यात्रा से थका हुआ जीवन अपने ही भार से दब कर कातर क्रन्दन कर उठेगा तब विश्व के कोने कोने में एक अज्ञातपूर्व सुख मुस्करा पड़ेगा। ऐसा ही मेरा स्वप्न है।

व्यक्तिगत सुख विश्ववेदना में घुल कर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दुःख विश्व के सुख में घुल कर जीवन को अमरत्व---

जब उस पूर्ण की सृष्टि होने पर भी मेरा जीवन इतनी त्रुटियों से भरा हुआ और इतना अपूर्ण है तब इस अपूर्ण जीवन की कृति में तो असंख्य त्रुटियाँ होंगी यह जान कर भी रश्मि को आप सब को समर्पित करने की धृष्टता के लिये क्षमा चाहती हूँ।

१५-९-३२

म०

प्रथम याम

नीहार

रचना काल

१९२४–१९२८

निशा की, धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास
बता दो मधुमदिरा का मोल,

झटक जाता था पागल वात
धूलि में तुहिन-कणों के हार,
सिखाने जीवन का संगीत
तभी तुम आये थे इस पार !

बिछाती थी सपनों के जाल
तुम्हारी वह करुणा की कोर,
गई वह अधरों की मुस्कान
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर,

भूलती थी मैं सीखे राग
बिछलते थे कर बारम्बार,
तुम्हें तब आता था करुणेश !
उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार !

गए तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा सा मनमोहन गान।

नहीं अब गाया जाता देव !
थकी अंगुली, हैं ढीले तार,
विश्ववीणा में अपनी आज
मिला लो यह अस्फुट झंकार !

रजतकरों की मृदुल तूलिका,
से ले तुहिन-बिन्दु सुकुमार,
कलियों पर जब आँक रहा था
करुण कथा अपनी संसार;
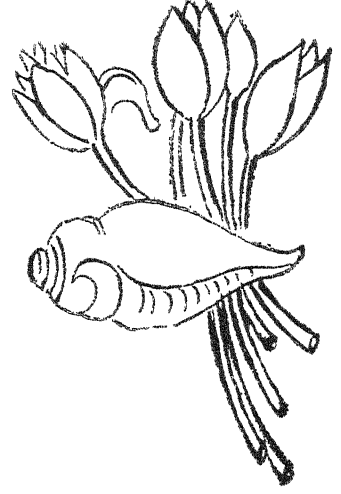
तरल हृदय की उच्छ्‌वासें
जब भोले मेघ लुटा जाते,
अन्धकार दिन की चोटों पर
अञ्जन बरसाने आते!

मधु की बूँदों में छलके जब
तारक-लोकों के शुचि फूल,
विधुर हृदय की मृदु कम्पन सा
सिहर उठा वह नीरव कूल;

मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से,
स्वप्नलोक के से आह्वान,
वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान!

चल चितवन के दूत सुना
उनके, पल में रहस्य की बात,
मेरे निर्निमेष पलकों में
मचा गए क्या क्या उत्पात !

जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना—
के मन प्याले पर प्याले !

पीड़ा का साम्राज्य बस गया
उस दिन दूर क्षितिज के पार,
मिटना था निर्वाण जहाँ
नीरव रोदन था पहरेदार !

कैसे कहती हो सपना है
अलि ! उस मूक मिलन की बात?
भरे हुए अबतक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास ?

वनवाला के गीतों सा
निर्जन में बिखरा है मधुमास,
इन कुंजों में खोज रहा है
सूना कोना मन्द बतास;

नीरव नभ के नयनों पर
हिलती हैं रजनी की अलकें,
जाने किसका पंथ देखतीं
बिछकर फूलों की पलकें !

मधुर चाँदनी धो जाती है
खाली कलियों के प्याले,
बिखरे से हैं तार आज
मेरी बीणा के मतवाले;

पहली सी झंकार नहीं है ।
और नहीं वह मादक राग,
अतिथि ! किन्तु सुनते जाओ
टूटे तारों का करुण विहाग !

मैं अनन्त पथ में लिखती जो
सस्मित सपनों की बातें,
उनको कभी न धो पायेंगी
अपने आँसू से रातें!
तारों में प्रतिबिम्बित हो
मुस्कायेंगी अनन्त आँखें,
होकर सीमाहीन, शून्य में
मँडरायेंगी अभिलाषें!

उड़ उड़ कर जो धूल करेगी
मेघों का नभ में अभिषेक,
अमिट रहेगी उसके अंचल—
में मेरी पीड़ा की रेख?
वीणा होगी मूक बजाने—
वाला होगा अन्तर्धान,
विस्मृति के चरणों पर आकर
लौटेंगे सौ सौ निर्वाण!

जब असीम से हो जायेगा
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल!

निश्वासों का नीड़, निशा का
बन जाता जब शयनागार,
लुट जाते अभिराम छिन्न
मुक्तावलियों के बन्दनवार,

तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार,
आँसू से लिख लिख जाता है 'कितना अस्थिर है संसार!'

हँस देता जब प्रात, सुनहरे
अञ्चल में बिखरा रोली,
लहरों की बिछलन पर जब
मचलीं पड़तीं किरणें भोली,

तब कलियाँ चुपचाप उठाकर पल्लव के घूँघट सुकुमार;
छलकी पलकों से कहती हैं 'कितना मादक है संसार!'

देकर सौरभ-दान पवन से
कहते जब मुरझाये फूल,
'जिसके पथ में बिछे वही
क्यों भरता इन आँखों में धूल?

'अब इनमें क्या सार' मधुर जब गाती भौंरों की गुञ्जार,
मर्मर का रोदन कहता है 'कितना निष्ठुर है संसार!'

स्वर्ण वर्ण से दिन लिख जाता
जब अपने जीवन की हार,
गोधूली, नभ के आँगन में
देती अगणित दीपक बार,

हँस कर तब उस पार तिमिर का कहता बढ़ बढ़ पारावार,
'बीते युग, पर बना हुआ है अब तक मतवाला संसार!'

स्वप्नलोक के फूलों से कर
अपने जीवन का निर्माण,
'अमर हमारा राज्य' सोचते
हैं जब मेरे पागल प्राण,

आकर तब अज्ञात देश से जाने किसकी मृदु झंकार,
गा जाती है करुण स्वरों में 'कितना पागल है संसार!'

वे मुस्काते फूल, नहीं—
जिनको आता है मुरझाना,
वे तारों के दीप, नहीं
जिनको भाता है बुझ जाना;

वे नीलम के मेघ, नहीं—
जिनको है घुल जाने की चाह,
वह अनन्त ऋतुराज, नहीं—
जिसने देखी जाने की राह;

वे सूने से नयन, नहीं—
जिनमें बनते आँसू मोती,
वह प्राणों की सेज, नहीं—
जिसमें बेसुध पीड़ा सोती;

ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं
जिसने जाना मिटने का स्वाद!

× × ×

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार?
रहने दो हे देव! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार!

ढुलकते आँसू सा सुकुमार
बिखरते सपनों सा अज्ञात,
चुरा कर अरुणा का सिन्दूर
मुस्कराया जब मेरा प्रात,

छिपाकर लाली में चुपचाप
सुनहला प्याला लाया कौन ?

× × ×

हँस उठे छूकर टूटे तार
प्राण में मँडराया उन्माद,
व्यथा मीठी ले प्यारी प्यास
सो गया बेसुध अन्तर्नाद,

घूंट में थी साकी की साध
सुना फिर फिर जाता है कौन ?
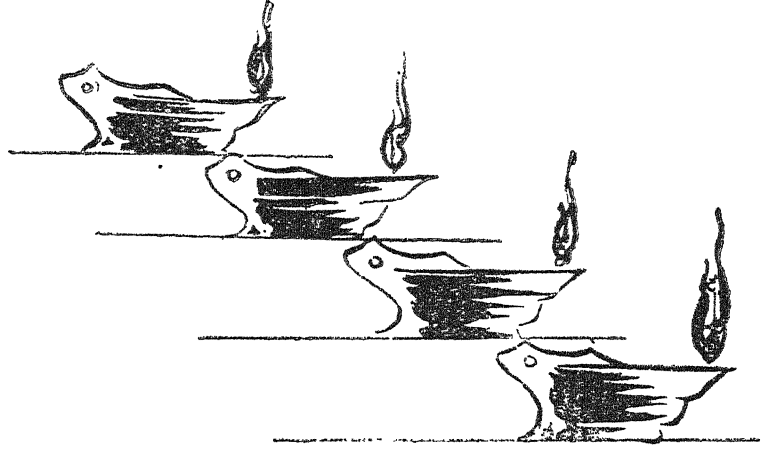
रजनी ओढ़े जाती थी
झिलमिल तारों की जाली,
उसके बिखरे वैभव पर
जब रोती थी उजियाली ;

शशि को छूने मचलीं सी
लहरों का कर कर चुम्बन,
बेसुध तम की छाया का
तटनी करती आलिङ्गन ;

अपनी जब करुण कहानी
कह जाता है मलयानिल,
आँसू से भर जाता जब—
सूखा अवनी का अंचल !

पल्लव के डाल हिंडोल
सौरभ सोता कलियों में;
छिप छिप किरणें आतीं जब
मधु से सींची गलियों में,

आँखों में रात बिता जब
विधु ने पीला मुख फेरा,
आया फिर चित्र बनाने
प्राची में प्रात चितेरा;

कन कन में जब छाई थी
वह नवयौवन की लाली,
मैं निर्धन तब आई ले
सपनों से भर कर डाली।

जिन चरणों की नख-आभा-
ने हीरक-जाल लजाये,
उन पर मैंने धुँधले से
आँसू दो चार चढ़ाये;

इन ललचाई पलकों पर
पहरा जब था व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का!

उस सोने के सपने को,
देखे कितने युग बीते,
आँखों के कोष हुए हैं
मोती बरसा कर रीते!

अपने इस सूनेपन की
मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जला कर
करती रहती दीवाली;

मेरी आहें सोती हैं
इन ओठों की ओटों में,
मेरा सर्वस्व छिपा है
इन दीवानी चोटों में;

चिन्ता क्या है, हे निर्मम!
बुझ जाये दीपक मेरा;
हो जायेगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य अँधेरा!!
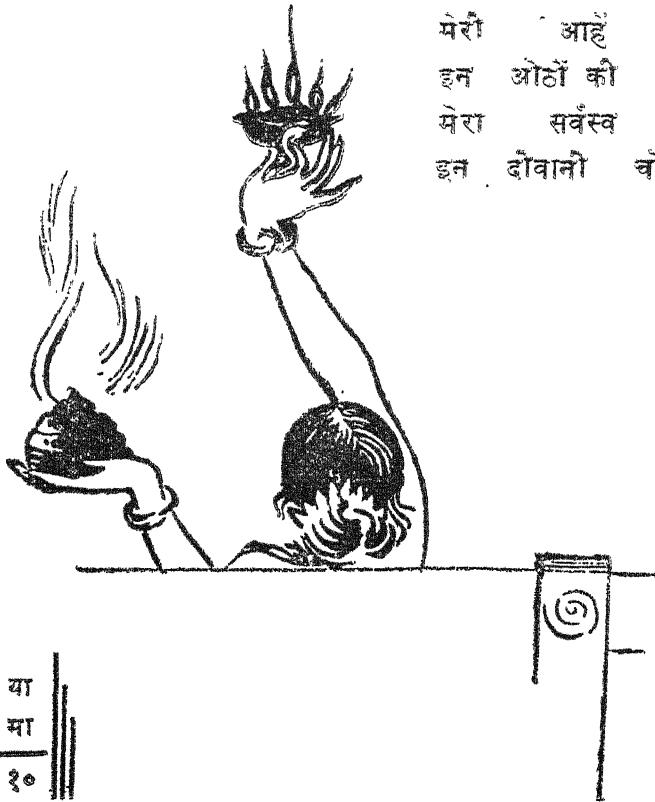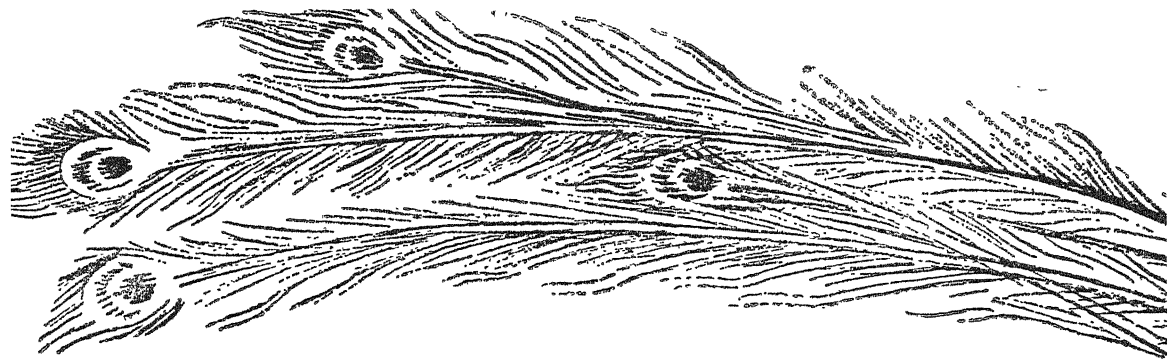
चाहता है यह पागल प्यार,
अनोखा एक नया संसार!

कलियों के उच्छ्वास शून्य में तानें एक वितान,
तुहिन-कणों पर मृदु कम्पन से सेज बिछा दें गान,

जहाँ सपने हों पहरेदार;
अनोखा एक नया संसार!

करते हों आलोक जहाँ बुझ बुझ कर कोमल प्राण,
जलने में विश्राम जहाँ मिटने में हो निर्वाण,

वेदना मधु-मदिरा की धार;
अनोखा एक नया संसार!

मिल जावें उस पार क्षितिज के सीमा सीमाहीन,
गर्वीले नक्षत्र धरा पर लोटें हो कर दीन,

उदधि हो नभ का शयनागार;
अनोखा एक नया संसार!

जीवन की अनुभूति-तुला पर अरमानों से तोल,
यह अबोध मन मूक व्यथा से ले पागलपन मोल,

करें दृग आँसू का व्यापार;
अनोखा एक नया संसार!
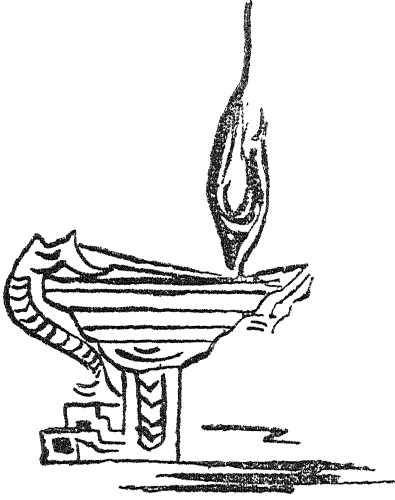
मिल जाता काले अंजन में
सन्ध्या की आँखों का राग,
जब तारे फैला फैला कर
सूने में गिनता आकाश;

उसकी खोई सी चाहों में
घुटकर मूक हुई आहों में !

झूम झूम कर मतवाली सी
पिये वेदनाओं का प्याला,
प्राणों में रूँधी निश्वासें
आती ले मेघों की माला;

उसके रह रह कर रोने में
मिल कर विद्युत् के खोने में !

धीरे से सूने आंगन में
फैला जब जाती हैं रातें,
भर भर के ठंढी साँसों में
मोती से आँसू की पाँतें;

उनकी सिहराई कम्पन में
किरणों के प्यासे चुम्बन में !

जाने किस बीते जीवन का
सन्देशा दे मंद समीरण,
छू देता अपने पंखों से
मुर्झाये फूलों के लोचन,

उनके फीके मुस्काने में
फिर अलसा कर गिर जाने में !

आँखों की नीरव भिक्षा में
आँसू के मिटते दागों में,
ओठों की हँसती पीड़ा में
आहों के बिखरे त्यागों में;

कन कन में बिखरा है निर्मम !
मेरे मानस का सूनापन !

बहती जिस नक्षत्र-लोक में
निद्रा के श्वासों से वात,
रजत-रश्मियों के तारों पर
बेसुध सी गाती थी रात !

अलसाती थीं लहरें पी कर
मधुमिश्रित तारों की ओस,
भरती थीं सपने गिन गिन कर
मूक व्यथायें अपने कोष !

दूर उन्हीं नीलम-कूलों पर
पीड़ा का ले झीना तार,
उच्छ्वासों की गूँथी माला
मैंने पाई थी उपहार ।

यह विस्मृति है या सपना वह
या जीवन-विनिमय की भूल !
काले क्यों पड़ते जाते हैं
माला के सोने से फूल ?
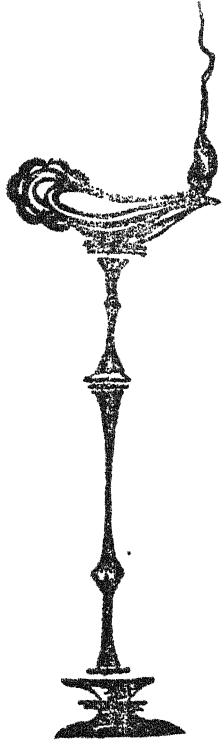
घायल मन लेकर सो जाती
मेघों में तारों की प्यास,
यह जीवन का ज्वार शून्य का
करता है बढ़ कर उपहास!

चल चपला के दीप जलाकर
किसे ढूँढ़ता अन्धाकार?
'अपने आँसू आज पिला दो'
कहता किन से पारावार?

झुक झुक झूम झूम कर लहरें
भरतीं बूँदों के मोती,
यह मेरे सपनों की छाया
झोकों में फिरती रोती!

आज किसी के मसले तारों—
की वह दूरागत झंकार,
मुझे बुलाती है सहमी सी
झंझा के परदों के पार!

इस असीम तम में मिलकर
मुझको पल भर सो जाने दो,
बुझ जाने दो देव! आज
मेरा दीपक बुझ जाने दो!

जिन नयनों की विपुल नीलिमा—
में मिलता नभ का आभास,
जिनका सीमित उर करता था
सीमाहीनों का उपहास;

जिस मानस में डूब गये—
कितनी करुणा कितने तूफान,
लोट रहा है आज धूल में
उन मतवालों का अभिमान!

जिन अधरों की मन्द हँसी थी
नव अरुणोदय का उपमान,
किया दैव ने जिन प्राणों का
केवल सुषमा से निर्माण;

तुहिनबिन्दु सा, मंजु सुमन सा
जिनका जीवन था सुकुमार,
दिया उन्हें भी निठुर काल ने
पाषाणों का शयनागार!

× × ×

कन कन में बिखरी सोती है
अब उनके जीवन की प्यास,
जगा न दे हे दीप! कहीं
उसको तेरा यह क्षीण प्रकाश!

छाया की आँखमिचौनी
मेघों का मतवालापन,
रजनी के श्याम कपोलों
पर ढरकीले श्रम के कन;

फूलों की मीठी चितवन
नभ की ये दीपावलियाँ,
पीले मुख पर सन्ध्या के
वे किरणों की फुलझड़ियां;

विधु की चाँदी की थाली
मादक मकरन्द भरी सी,
जिसमें उजियारी रातें
लुटतीं घुलतीं मिसरी सी!

भिक्षुक से फिर जाओगे
जब लेकर यह अपना धन,
करुणामय तब समझोगे
इन प्राणों का मँहगापन!

क्यों आज दिये देते हो
अपना मरकत-सिंहासन?
यह है मेरे मरु-मानस-
का चमकीला सिकता-कन!

आलोक यहां लुटता है
बुझ जाते हैं तारागण,
अविराम जला करता है
पर मेरा दीपक सा मन !

जिसकी विशाल छाया में
जग बालक सा सोता है,
मेरी आँखों में वह दुख
आँसू बन कर खोता है !

जग हँसकर कह देता है
मेरी आँखें हैं निर्धन,
इनके बरसाये मोती
क्या वह अबतक पाया गिन ?

मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक को व्रीड़ा,
उसके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा ?

उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन ?
उनमें अनन्त करुणा है
इसमें असीम सूनापन !
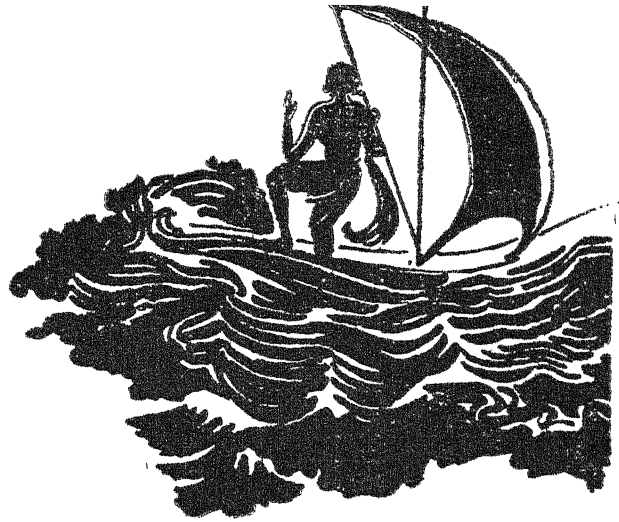
घोर तम छाया चारो ओर
घटायें घिर आईं घन घोर;
वेग मारुत का है प्रतिकूल
हिले जाते हैं पर्वतमूल;
गरजता सागर बारम्बार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

तरङ्गें उठीं पर्वताकार
भयंकर करतीं हाहाकार;
अरे उनके फेनिल उच्छ्वास
तरी का करते हैं उपहास,
हाथ से गई छूट पतवार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

ग्रास करने तरणी, स्वच्छन्द
घूमते फिरते जलचर-वृन्द;
देख कर काला सिन्धु अनन्त
हो गया हा साहस का अन्त !
तरङ्गें हैं उत्ताल अपार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

बुझ गया वह नक्षत्र-प्रकाश
चमकती जिसमें मेरी आश;
रैन बोली सज कृष्ण दुकूल
विसर्जन करो मनोरथ-फूल;
न लाये कोई कर्णाधार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

सुना था मैं ने इस के पार
बसा है सोने का संसार,
जहाँ के हँसते विहग ललाम
मृत्यु-छाया का सुनकर नाम!
धरा का है अनन्त शृंगार,
कौन पहुँचा देगा उस पार?

जहाँ के निर्झर नीरव गान
सुना करते अमरत्व प्रदान;
सुनाता नभ अनन्त झंकार
बजा देता है सारे तार;
भरा जिसमें असीम सा प्यार,
कौन पहुँचा देगा पार?

पुष्प में है अनन्त मुस्कान
त्याग का है मारुत में गान;
सभी में है स्वर्गीय विकास
वही कोमल कमनीय प्रकाश;
दूर कितना है वह संसार!
कौन पहुँचा देगा उस पार?

सुनाई किसने पल में आन
कान में मधुमय मोहक तान?
'तरी को ले जाओ मँझधार
डूब कर हो जाओगे पार;
विसर्जन ही है कर्णधार,
वही पहुँचा देगा उस पार!'

थकी पलकें सपनों पर डाल
व्यथा में सोता हो आकाश,
छलकता जाता हो चुपचाप
बादलों के उर से अवसाद;
वेदना की वीणा पर देव
शून्य गाता हो नीरव राग,
मिलाकर निश्वासों के तार
गूँथती हो जब तारे रात;
उन्हीं तारक-फूलों में देव!
गूँथना मेरे पागल प्राण—
हठीले मेरे छोटे प्राण!

किसी जीवन की मीठी याद
लुटाता हो मतवाला प्रात,
कली अलसाई आँखें खोल
सुनाती हो सपने की बात;
खोजते हों खोया उन्माद
मन्द मलयानिल के उच्छ्वास,
माँगती हो आँसू के बिन्दु
मूक फूलों की सोती प्यास;
पिला देना धीरे से देव
उसे मेरे आँसू सुकुमार—
सजीले ये आँसू के हार!

मचलते उद्‌गारों से खेल
उलझते हों किरणों के जाल,
किसी की छूकर ठंढी साँस
सिहर जाती हों लहरें बाल;
चकित सा सूने में संसार
गिन रहा हो प्राणों के दाग,
सुनहली प्याली में दिनमान
किसी का पीता हो अनुराग,
ढाल देना उसमें अनजान
देव मेरा चिर संचित राग—
अरे यह मेरा मादक राग !

मत्त हो स्वप्निल हाला ढाल
महानिद्रा में पारावार,
उसी की धड़कन में तूफान
मिलाता हो अपनी झंकार;
झकोरों से मोहक सन्देश
कह रहा हो छाया का मौन,
सुप्त आहों का दीन विषाद
पूछता हो 'आता है कौन' ?
बहा देना आकर चुपचाप
तभी यह मेरा जीवन-फूल—
सुभग मेरा मुरझाया फूल !

इन हीरक से तारों को
कर चूर बनाया प्याला,
पीड़ा का सार मिला कर
प्राणों का आसव ढाला;

मलयानिल के झोकों में
अपना उपहार लपेटे,
मैं सूने तट पर आई
बिखरे उद्‌गार समेटे !

काले रजनी अंचल में
लिपटीं लहरें सोती थीं,
मधु मानस का बरसाती
वारिदमाला रोती थी;

नीरव तम की छाया में
छिप सौरभ की अलकों में,
गायक वह गान तुम्हारा
आ मंडराया पलकों में !

हाला सी, हालाहल सी,
बह गईं अचानक लहरीं,
डूबा जग भूला तन मन
आँखें शिथिलाईं सिहरीं !

बेसुध से प्राण हुए जब
छूकर उन झंकारों को,
उड़ते थे, अकुलाते थे
चुम्बन करने तारों को !

उस मतवाली वीणा से
जब मानस था मतवाला,
वे मूक हुईं झंकारें
वह चूर हो गया प्याला !

हो गईं कहाँ अन्तर्हित
सपने ले कर वे रातें !
जिनका पथ आलोकित कर
बुझने जाती हैं आँखें !
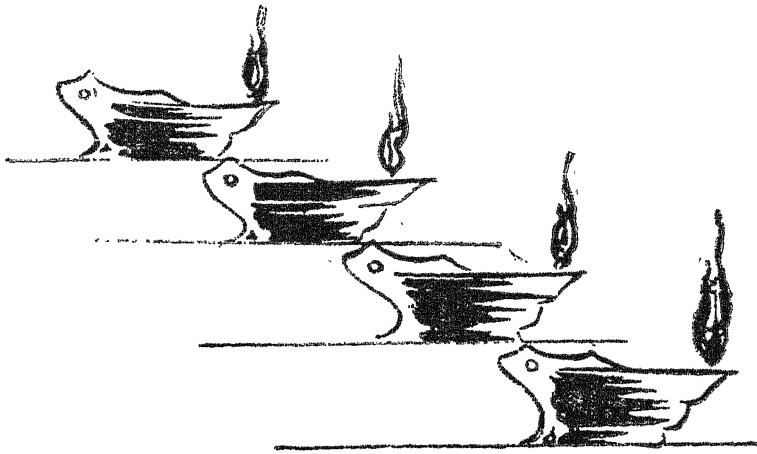
जो मुखरित कर जाती थीं
मेरा नीरव
मैं ने दुर्बल प्राणों की
वह आज सुला दी कम्पन !

थिरकन अपनी पुतली की
भारी पलकों में बाँधी
निस्पन्द पड़ी हैं आँखें
बरसाने वाली आँधी !

जिसके निष्फल जीवन ने
जल जल कर देखीं राहें,
निर्वाण हुआ है देखो
वह दीप लुटा कर चाहें !

निर्घोष घटाओं में छिप
तड़पन चपला की सोती
झंझा के उन्मादों में
घुलती जाती बेहोशी !
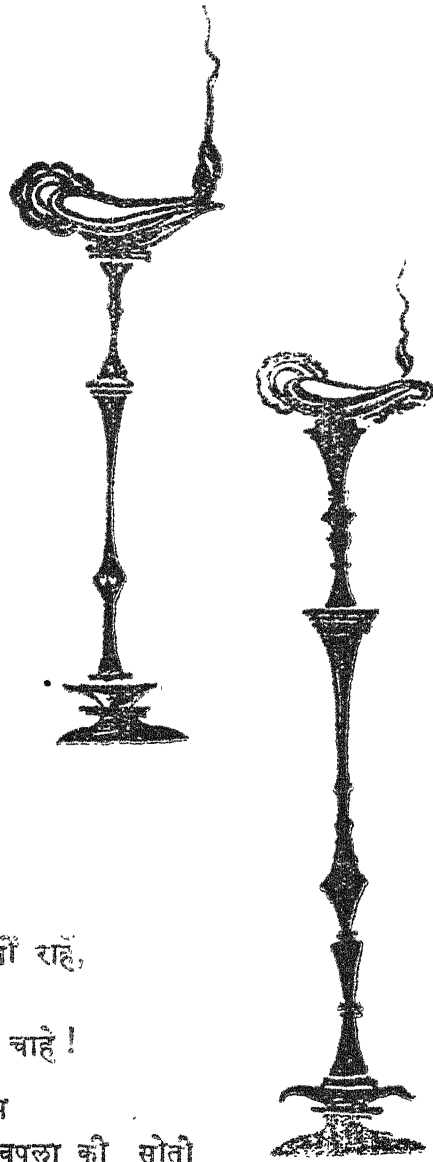
करुणामय को भाता है
तम के परदों में आना,
हे नभ की दीपावलियो !
तुम पल भर को बुझ जाना !

कितनी रातों को मैंने
नहलाई है अंधियारी,
धो डाली है सन्ध्या के
पीले सेंदुर से लाली;

नभ के धुँधले कर डाले
अपलक चमकीले तारे,
इन आहों पर तैरा कर
रजनीकर पार उतारे!

बह गई क्षितिज की रेखा
मिलती है कहीं न हेरे
भूला सा मत्त समीरण
पागल सा देता फेरे!

अपने उर पर सोने से
लिखकर कुछ प्रेम-कहानी,
सहते हैं रोते बादल
तूफानों की मनमानी!

इन बूँदों के दर्पण में
करुणा क्या झाँक रही है?
क्या सागर की धड़कन में
लहरें बढ़ आँक रही हैं?

पीड़ा मेरे मानस में
भीगे पट सी लिपटी है,
डूबी सी यह निश्वासें
ओठों में आ सिमटी हैं !

मुझ में विक्षिप्त झकोरे !
उन्माद मिला दो अपना,
हाँ नाच उठे जिसको छू
मेरा नन्हा सा सपना !!

पीड़ा टकरा कर फूटे
घूमे विश्राम विकल सा,
तम बढ़े मिटा डाले सब
जीवन काँपे चलदल सा !

फिर भी इस पार न आवे
जो मेरा नाविक निर्मम,
सपनों से बाँध डुबाना
मेरा छोटा सा जीवन !
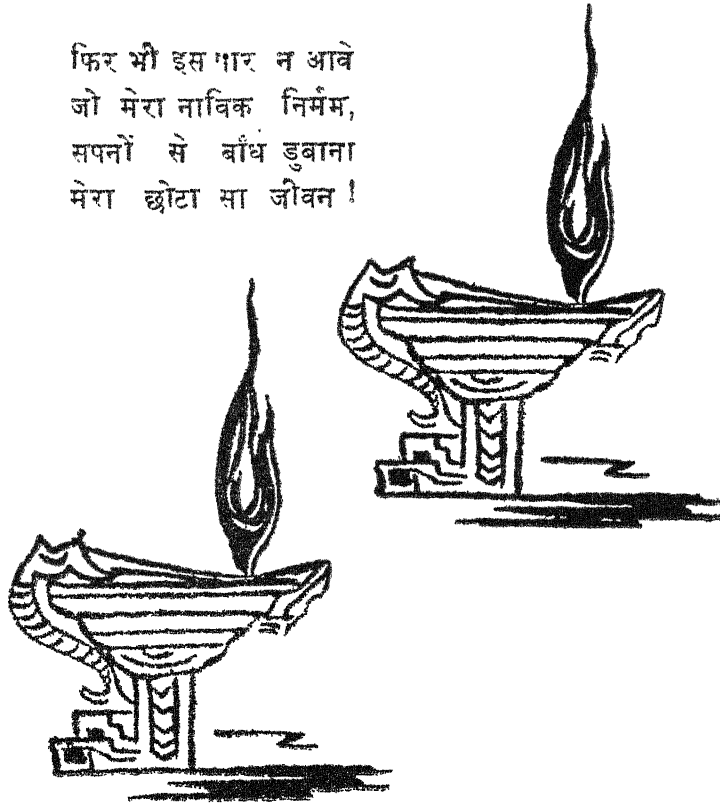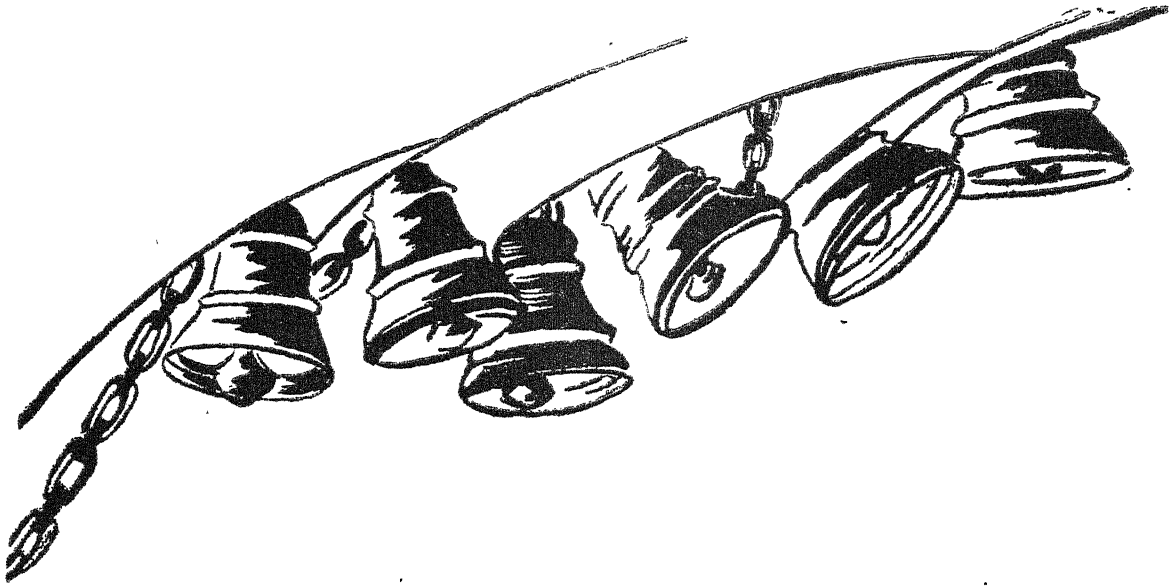
इसमें अतीत सुलझाता
अपने आँसू की लड़ियाँ,
इसमें असीम गिनता है
वे मधुमासों की घड़ियाँ;
इस अंचल में चित्रित हैं
भूलीं जीवन की हारें,
उनकी छलनामय छाया
मेरी अनन्त मनुहारें !

वे निर्धन के दीपक सी,
बुझती सी मूक व्यथायें,
प्राणों की चित्रपटी में
आँकी सी करुण कथायें;
मेरे अनन्त जीवन का
वह मतवाला बालकपन,
इसमें थक कर सोता है
लेकर अपना चंचल मन !

ठहरो बेसुध पीड़ा को
मेरी न कहीं छू लेना !
जब तक वे आ न जगावें
बस सोती रहने देना !!

शून्य से टकरा कर सुकुमार
करेगी पीड़ा हाहाकार,
बिखर कर कन कन में हो व्याप्त
मेघ बन छा लेगी संसार !

पिघलते होंगे यह नक्षत्र
अनिल की जब छूकर निश्वास,
निशा के आँसू में प्रतिबिम्ब
देख निज काँपेगा आकाश !

विश्व होगा पीड़ा का राग
निराशा जब होगी वरदान,
साथ लेकर मुरझाई साध
बिखर जायेंगे प्यासे प्राण !

उदधि नभ को कर लेगा प्यार
मिलेंगे सीमा और अनन्त,
उपासक ही होगा आराध्य
एक होंगे पतझार वसन्त !

बुझेगा जलकर आशा-दीप
सुला देगा आकर उन्माद,
कहाँ कब देखा था वह देश ?
अतल में डूबेगी यह याद !

प्रतीक्षा में मतवाले नयन
उड़ेंगे जब सौरभ के साथ,
हृदय होगा नीरव आह्वान
मिलोगे क्या तब हे अज्ञात ?
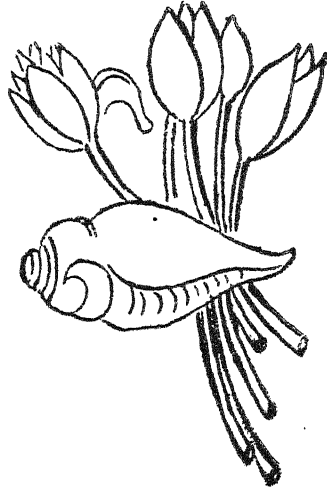
था कली के रूप शैशव—
में अहो सूखे सुमन,
मुस्कराता था, खिलाती
अंक में तुझको पवन !

खिल गया जब पूर्ण तू—
मञ्जुल सुकोमल पुष्पवर,
लुब्ध मधु के हेतु मँडराते
लगे आने भ्रमर !

स्निग्ध किरणें चन्द्र की—
तुझको हँसाती थीं सदा,
रात तुझ पर वारती थी
मोतियों की सम्पदा !

लोरियाँ गाकर मधुप
निद्रा विवश करते तुझे,
यत्न माली का रहा—
आनन्द से भरता तुझे !

कर रहा अठखेलियाँ—
इतरा सदा उद्यान में,
अन्त का यह दृश्य आया—
था कभी क्या ध्यान में !

सो रहा अब तू धरा पर—
शुष्क बिखराया हुआ,
गन्ध कोमलता नहीं
मुख मंजु मुरझाया हुआ !

आज तुझको देखकर
चाहक भ्रमर आता नहीं,
लाल अपना राग तुझ पर
प्रात बरसाता नहीं ;

जिस पवन ने अंक में—
ले प्यार था तुझको किया,
तीव्र झोके से सुला—
उसने तुझे भू पर दिया !

कर दिया मधु और सौरभ
दान सारा एक दिन
किन्तु रोता कौन है
तेरे लिए दानी सुमन ?

मत व्यथित हो फूल ! किसको
सुख दिया संसार ने ?
स्वार्थमय सबको बनाया—
है यहाँ करतार ने !

विश्व में हे फूल ! तू—
सब के हृदय भाता रहा,
दान कर सर्वस्व फिर भी—
हाय हर्षाता रहा ;

जब न तेरी ही दशा पर
दुख हुआ संसार को,
कौन रोयेगा सुमन !
हमसे मनुज निःसार को ?
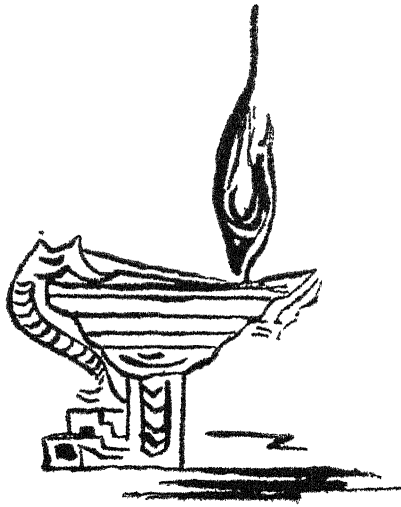
घोर घन की अवगुण्ठन डाल
करुण सा क्या गाती है रात ?

दूर छूटा वह परिचित कूल
कह रहा है यह झंझावात;

लिए जाते तरणी किस ओर
अरे मेरे नाविक नादान !

हो गया विस्मृत मानव-लोक
हुए जाते हैं बेसुध प्राण,

किन्तु तेरा नीरव संगीत
निरन्तर करता है आह्वान;

यही क्या है अनन्त की राह
अरे मेरे नाविक नादान ?
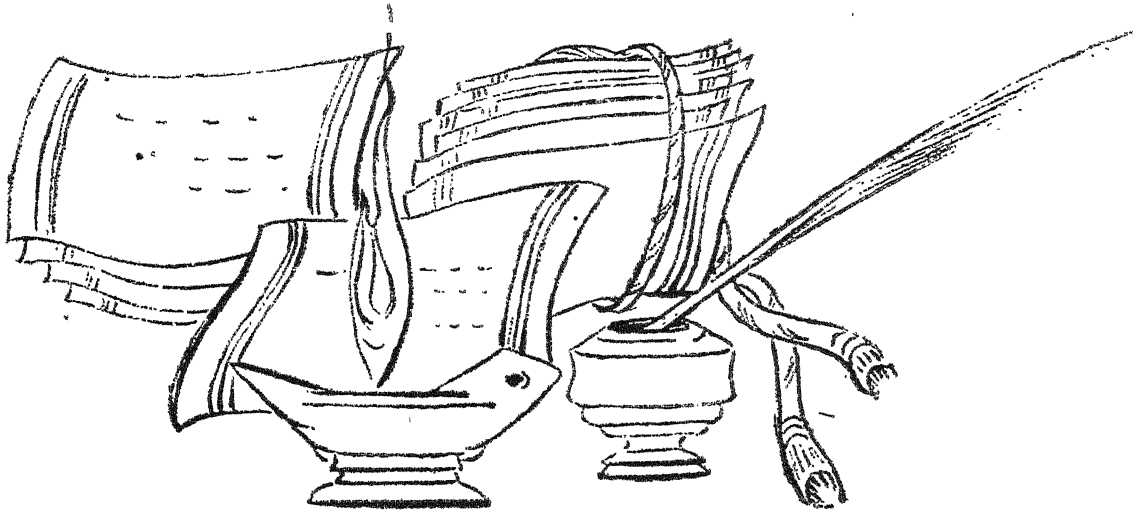
इस एक बूंद आँसू में
चाहे साम्राज्य बहा दो,
वरदानों की वर्षा से
यह सूनापन बिखरा दो;

इच्छाओं की कम्पन से
सोता एकान्त जगा दो,
आशा की मुस्काहट पर
मेरा नैराश्य लुटा दो !

चाहे जर्जर तारों में
अपना मानस उलझा दो,
इन पलकों के प्यालों में
सुख का आसव छलका दो;

मेरे बिखरे प्राणों में
सारी करुणा ढुलका दो,
मेरी छोटी सीमा में
अपना अस्तित्व मिटा दो !

पर शेष नहीं होगी यह
मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूंढ़ा
तुम में ढूंढूंगी पीड़ा !

मैं कम्पन हूँ तू करुण राग
मैं आँसू हूँ तू है विषाद,
मैं मदिरा तू उसका खुमार
मैं छाया तू उसका अधार;

मेरे भारत मेरे विशाल
मुझको कह लेने दो उदार !
फिर एक बार बस एक बार !

जिनसे कहती बीती बहार
'मतवालो जीवन है असार'
जिन झंकारों के मधुर गान
ले गया छीन कोई अजान,

उन तारों पर बनकर विहाग
मँडरा लेने दो हे उदार !
फिर एक बार बस एक बार !!

कहता है जिनका व्यथित मौन
'हम सा निष्फल है आज कौन'?
निर्धन के धन सी हास-रेख
जिनकी जग ने पाई न देख,

उन सूखे ओठों के विषाद—
में मिल जाने दो हे उदार !
फिर एक बार बस एक बार !

जिन पलकों में तारे अमोल
आँसू से करते हैं किलोल,
जिन आँखों का नीरव अतीत
कहता 'मिटना है मधुर जीत',

उस चिन्तित चितवन में विहास
बन जाने दो मुझको उदार !
फिर एक बार बस एक बार !

फूलों सी हो पल में मलीन
तारों सी सूने में विलीन,
ढुलती बूँदों से ले विराग
दीपक से जलने का सुहाग,

अन्तरतम की छाया समेट
मैं तुझमें मिट जाऊँ उदार !
फिर एक बार बस एक बार ! !

समीरण के पङ्खों में गूँथ
लुटा डाला सौरभ का भार,
दिया, ढुलका मानस-मकरन्द
मधुर अपनी स्मृति का उपहार;

अचानक हो क्यों छिन्न मलीन
लिया फूलों का जीवन छीन ?

दैव सा निष्ठुर, दुख सा मूक
स्वप्न सा, छाया सा अनजान,
वेदना सा, भ्रम सा गम्भीर
कहाँ से आया वह आह्वान ?

हमारी हँसती चाह समेट
ले गया कौन तुम्हें किस देश ?

छोड़ कर जो वीणा के तार
शून्य में लय हो जाता राग,
विश्व छा लेती छोटी आह
प्राण का बन्दीखाना त्याग;

नहीं जिसका सीमा में अन्त
मिली है क्या वह साध अनन्त ?

ज्योति बुझ गई रह गया दीप
रही झंकार गया वह गान,
विरह है या अखण्ड संयोग
शाप है या यह है वरदान ?

पूछता आकर हाहाकार
कहाँ हो ! जीवन के उस पार ?

मधुर जीवन था मुग्ध वसन्त
विधुर बन कर आती क्यों याद?
'सुधा' वसुधा में लाया एक
प्राण में लाती एक विषाद;

बुझाकर छोटा दीपालोक
हुई क्या हो असीम में लोप?

हुई सोने की प्रतिमा क्षार
साधनायें बैठी हैं मौन,
हमारा मानसकुञ्ज उजाड़
दे गया नीरव रोदन कौन?

नहीं क्या अब होगा स्वीकार
पिघलती आँखों का उपहार?

बिखरते स्वप्नों की तस्वीर
अधूरा प्राणों का सन्देश,
हृदय की लेकर प्यासी साध
बसाया है अब कौन विदेश?

रो रहा है चरणों के पास
चाह जिनकी थी उनका प्यार!

यहीं है वह विस्मृत सङ्गीत
खो गई है जिसकी झंकार,
यहीं सोते हैं वे उच्छ्वास
जहाँ रोता बीता संसार;

यही है प्राणों का इतिहास
यही बिखरे वसन्त का शेष,
नहीं जो अब आयेगा लौट
यही उसका अक्षय सन्देश !

समाहित है अनन्त आह्वान
यही मेरे जीवन का सार,
अतिथि ! क्या ले जाओगे साथ
मुग्ध मेरे आँसू दो चार ?

कामना की पुलकों में भूल
नवल फूलों के छूकर अङ्ग,

लिए मतवाला सौरभ साथ
लजीली लतिकायें भर अंक,

यहाँ मत आओ मत्त समीर !
सो रहा है मेरा एकान्त !

लालसा की मदिरा में चूर
क्षणिक भंगुर यौवन पर भूल,

साथ लेकर भौंरों की भीर
विलासी हे उपवन के फूल !

बनाओ इसे न लीलाभूमि
तपोवन है मेरा एकान्त !

निराली कलकल में अभिराम
मिलाकर मोहक मादक गान,

छलकती लहरों में उद्दाम
छिपा अपना अस्फुट आह्वान,

न कर हे निर्झर ! भङ्ग समाधि
साधना है मेरा एकान्त !

विजन वन में बिखरा कर राग
जगा सोते प्राणों की प्यास,

ढालकर सौरभ में उन्माद
नशीली फैला कर निश्वास,

लुभाओ इसे न मुग्ध वसन्त !
विरागी है मेरा एकान्त !

गुलाबी चल चितवन में बोर
सजीले सपनों की मुस्कान,

झिलमिलाती अवगुण्ठन डाल
सुनाकर परिचित भूली तान,

जला मत अपना दीपक आश !
न खो जाये मेरा एकान्त !
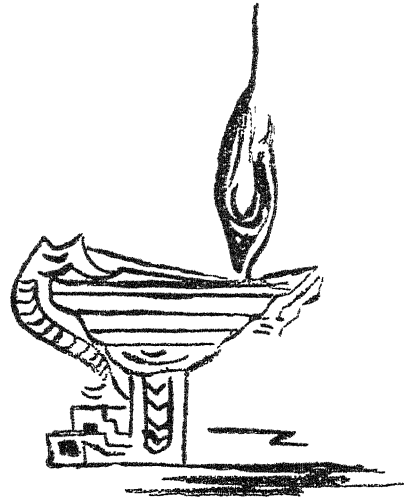
निराशा के झोकों ने देव !
भरी मानस-कुंजों में धूल,
वेदनाओं के झञ्झावात
गए बिखरा यह जीवन-फूल !

बरसते थे मोती अवदात
जहाँ तारक-लोकों से टूट,
जहां छिप जाते थे मधुमास
निशा के अभिसारों को लूट !

जला जिसमें आशा के दीप
तुम्हारी करती थी मनुहार,
हुआ वह उच्छ्वासों का नीड़
रुदन का सूना स्वप्नागार :

हृदय पर अंकित कर सुकुमार
तुम्हारी अवहेला की चोट,
बिछाती हूँ पथ में करुणेश
छलकती आँखें हँसते ओठ !

स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास
देव-वीणा का टूटा तार,
मृत्यु का क्षणभंगुर उपहार
रत्न वह प्राणों का शृङ्गार;

नई आशाओं का उपवन
मधुर वह था मेरा जीवन!

क्षीरनिधि की थी सुप्त तरङ्ग
सरलता का न्यारा निर्झर,
हमारा वह सोने का स्वप्न
प्रेम की चमकीली आकर;

शुभ्र जो था निर्मेघ गगन
सुभग मेरा संगी जीवन!

अलक्षित आ किसने चुपचाप
सुना अपनी सम्मोहन तान,
दिखाकर माया का साम्राज्य
बना डाला इसको अज्ञान?
मोह-मदिरा का आस्वादन
किया क्यों हे भोले जीवन!

न रहता भौंरों का आह्वान
नहीं रहता फूलों का राज्य,
कोकिला होती अन्तर्धान
चला जाता प्यारा ऋतुराज;
असम्भव है चिर सम्मेलन
न भूलो क्षणभंगुर जीवन!

तुम्हें ठुकरा जाता नैराश्य
हँसा जाती है तुमको आश,
नचाता मायावी संसार
लुभा जाता सपनों का हास;
मानते विष को संजीवन
मुग्ध मेरे भूले जीवन!

विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द,
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द;
यहाँ किसका अनन्त यौवन?
अरे अस्थिर छोटे जीवन!

छलकती जाती है दिन रैन
लबालब तेरी प्याली मीत!

ज्योति होती जाती है क्षीण
मौन होता जाता संगीत;

करो नयनों का उन्मीलन
क्षणिक् हे मतवाले जीवन!

शून्य से बन जाओ गम्भीर
त्याग की हो जाओ झंकार,

इसी छोटे प्याले में आज
डुबा डालो सारा संसार;

लजा जायें यह मुग्ध सुमन
बनो ऐसे छोटे जीवन?

सखे! यह है माया का देश
क्षणिक् है मेरा तेरा सङ्ग,

यहाँ मिलता काँटों में बन्धु!
सजीला सा फूलों का रङ्ग;

तुम्हें करना विच्छेद सहन
न भूलो हे प्यारे जीवन

हुए हैं कितने अन्तर्धान
छिन्न होकर भावों के हार,
घिरे घन से कितने उच्छ्वास
उड़े हैं नभ में होकर क्षार !

शून्य को छूकर आये लौट
मूक होकर मेरे निश्वास,
बिखरती है पीड़ा के साथ
चूर होकर मेरी अभिलाष !

छा रही है बनकर उन्माद
कभी जो थी अस्फुट झंकार,
काँपता सा आँसू का बिन्दु
बना जाता है पारावार !

खोज जिसकी वह है अज्ञात
शून्य वह है भेजा जिस देश,
लिये जाओ अनन्त के पार
प्राण-वाहक सूना सन्देश !

जिस दिन नीरव तारों से,
बोलीं किरणों की अलकें,
'सो जाओ अलसाई हैं
सुकुमार तुम्हारी पलकें!'

जब इन फूलों पर मधु की
पहली बूँदें बिखरी थीं,
आँखें पंकज की देखीं
रवि ने मनुहार भरीं सीं!

दीपकमय कर डाला जब
जलकर पतङ्ग ने जीवन,
सीखा बालक मेघों ने
नभ के आँगन में रोदन;

उजियारी अवगुण्ठन में
विधु ने रजनी को देखा,
तब से मैं ढूंढ़ रही हूँ
उनके चरणों की रेखा!

मैं फूलों में रोती वे
बालारुण में मुस्काते,
मैं पथ में बिछ जाती हूँ
वे सौरभ में उड़ जाते!

वे कहते हैं उनको मैं
अपनी पुतली में देखूं.
यह कौन बता जायेगा
किसमें पुतली को देखूं?

मेरी पलकों पर रातें
बरसाकर मोती सारे,
कहतीं 'क्या देख रहे हैं
अविराम तुम्हारे तारे?'

तम ने इन पर अञ्जन से
बुन बुन कर चादर तानी,
इन पर प्रभात ने फेरा
आकर सोने का पानी!

इन पर सौरभ की साँसें
लुट लुट जातीं दीवानी,
यह पानी में बैठी हैं
बन स्वप्न-लोक की रानी!

कितनी बीतीं पतझारें
कितने मधु के दिन आये,
मेरी मधुमय पीड़ा को
कोई पर ढूंढ़ न पाये!

झिप झिप आँखें कहती हैं
'यह कैसी है अनहोनी?
हम और नहीं खेलेंगी
उनसे यह आँखमिचौनी!'

अपने जर्जर अञ्चल में
भरकर सपनों की माया
इन थके हुए प्राणों पर
छाई विस्मृति की छाया!

मेरे जीवन की जागृति!
देखो फिर भूल न जाना,
जो वे सपना बन आवें
तुम चिरनिद्रा बन जाना!

जहाँ है निद्रामग्न वसन्त
तुम्हीं हो वह सूखा उद्यान,
तुम्हीं हो नीरवता का राज्य
जहाँ खोया प्राणों ने गान;

निराली सी आँसू की बूँद
छिपा जिसमें असीम अवसाद,
हलाहल या मदिरा का घूँट
डुबा जिसने डाला उन्माद!

जहाँ बन्दी मुरझाया फूल
कली की हो ऐसी, मुस्कान,
ओसकन का छोटा आकार
छिपा जो लेता है तूफान;

जहाँ रोता है मौन अतीत
सखी! तुम हो ऐसी झंकार,
जहाँ बनती आलोक-समाधि
तुम्हीं हो ऐसा अन्धाकार!
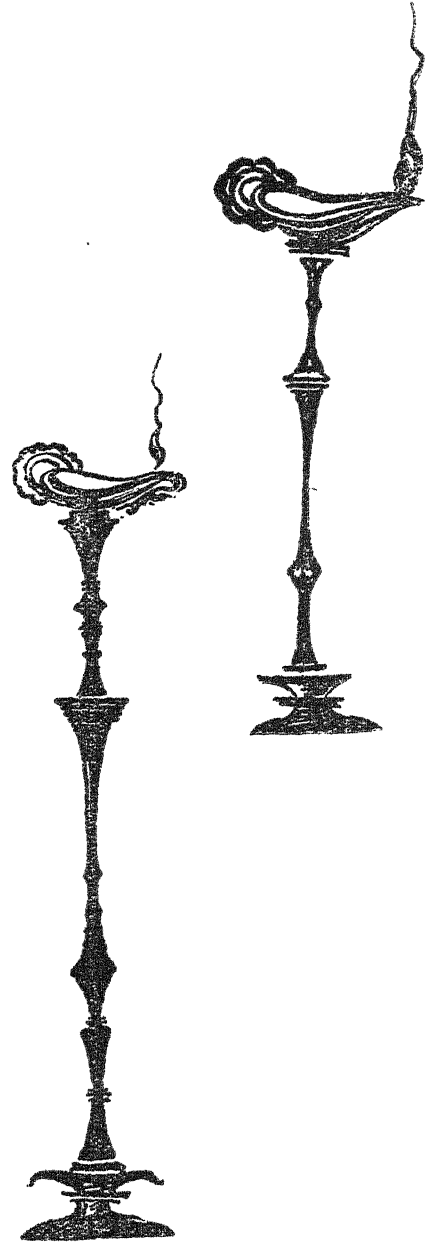
जहाँ मानस के रत्न विलीन
तुम्हीं हो ऐसा पारावार,
अपरिचित हो जाता है मीत
तुम्हीं हो ऐसा अञ्जन सार !

मिटा देता आँसू के दाग
तुम्हारा यह सोने सा रङ्ग,
डुबा देती बीता संसार
तुम्हारी यह निस्तब्ध तरङ्ग !

भस्म जिसमें हो जाता काल
तुम्हीं वह प्राणों का सन्यास,
लेखनी हो ऐसी विपरीत
मिटा जो जाती है इतिहास,

साधनाओं का दे उपहार
तुम्हें पाया है मैंने अन्त,
लुटा अपना सीमित ऐश्वर्य
मिला है यह वैराग्य अनन्त !

भुला डालो जीवन की साध
मिटा डालो बीते का लेश,
एक रहने देना यह ध्यान
क्षणिक् है यह मेरा परदेश !
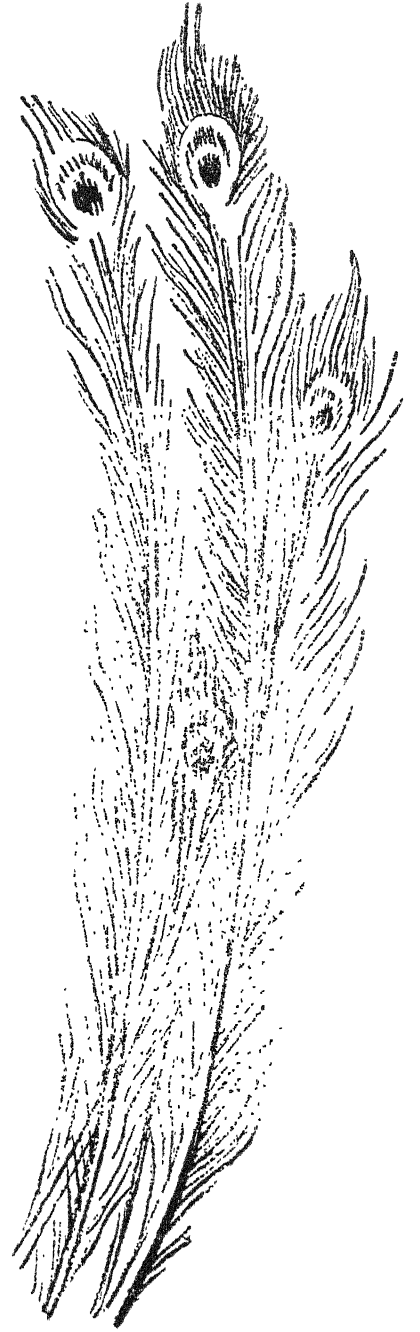
गरजता सागर तम है घोर
घटा घिर आई सूना तीर,
अँधेरी सी रजनी में पार
बुलाते हो कैसे बेपीर?

नहीं है तरणी कर्णधार
अपरिचित है वह तेरा देश,
साथ है मेरे निर्मम देव!
एक बस तेरा ही सन्देश।

हाथ में लेकर जर्जर बीन
इन्हीं बिखरे तारों को जोड़,
लिये कैसे पीड़ा का भार
देव आऊँ अनन्त की ओर?
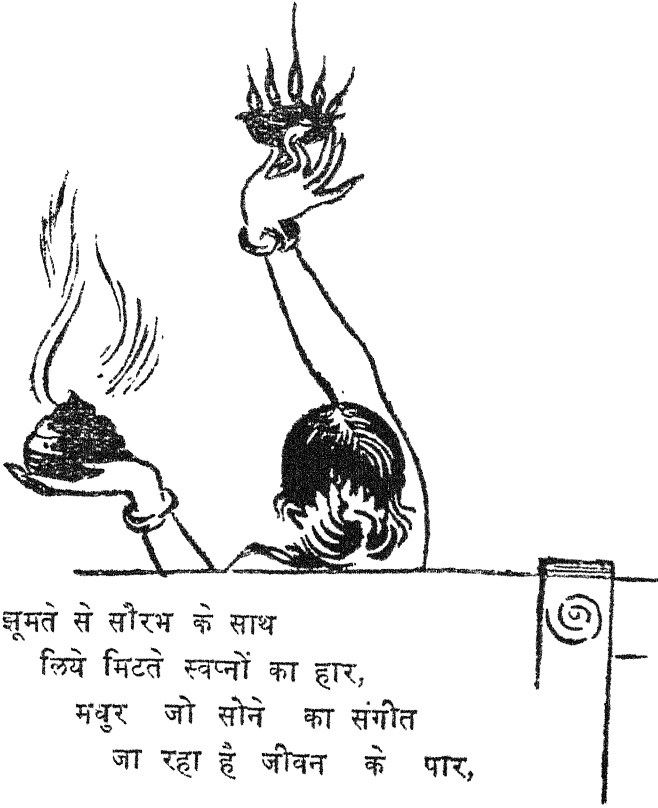
झूमते से सौरभ के साथ
लिये मिटते स्वप्नों का हार,
मधुर जो सोने का संगीत
जा रहा है जीवन के पार,

तुम्हीं अपने प्राणों में मौन
बाँध लेते उसकी झंकार !

काल की लहरों में अविराम
बुलबुले होते अन्तर्धान,
सजल उनका छोटा ऐश्वर्य्य
डूबता लेकर प्यासे प्राण,

समाहित हो जाती वह याद
हृदय में तेरे हे पाषाण !

पिघलती आँखों के सन्देश
आँसुओं के वे पारावार,
भग्न आशाओं के अवशेष
जली अभिलाषाओं के क्षार,

मिलाकर उच्छ्वासों की धूलि
रंगाई है तूने तस्वीर !

गूँथ बिखरे सूखे अनुराग
बीन करके प्राणों के दान,
मिले रज में सपनों को ढूंढ़
खोज कर वे भूले आह्वान ;
अनोखे से माली निर्जीव
बनाई है आँसू की माल!

मिटा जिनको जाता है काल
अमिट करते हो उनकी याद,
डुबा देता जिसको तूफान
अमर कर देते हो वह साध,
मूक जो हो जाती है चाह
तुम्हीं उसका देते सन्देश!

राख में सोने का साम्राज्य
शून्य में रखते हो संगीत,
धूल से लिखते हो इतिहास
बिन्दु में भरते हो वारीश ;
तुम्हीं में रहता मूक वसन्त
अरे सूखे फूलों के हास!
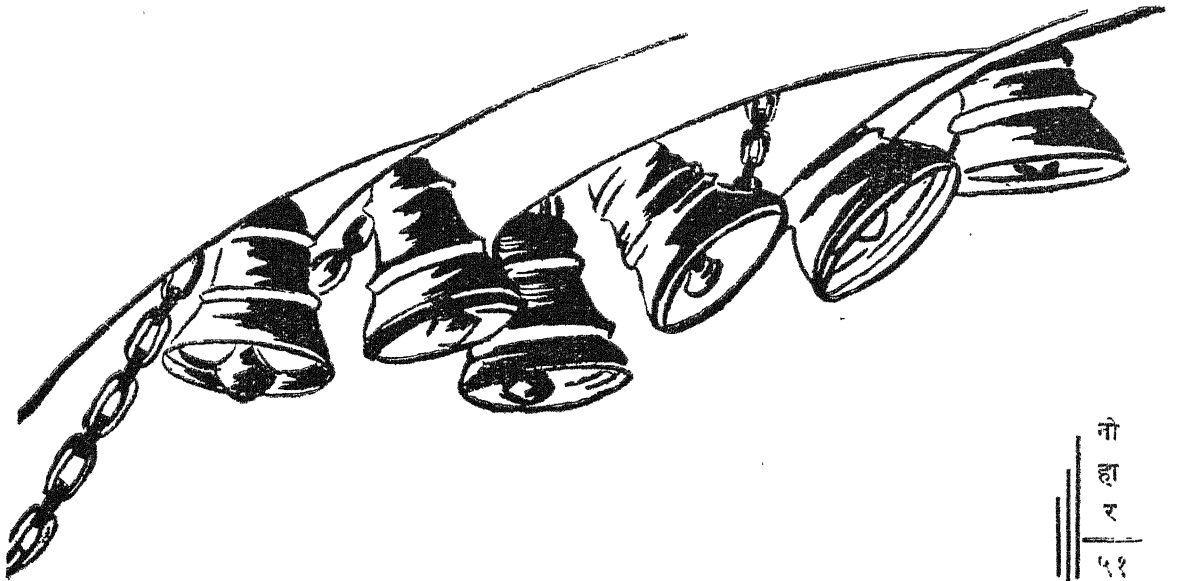
झिलमिल तारों की पलकों में
स्वप्निल मुस्कानों को ढाल,

मधुर वेदनाओं से भर के
मेघों के छायामय थाल,

रँग डाले अपनी लाली में
गूँथ नये ओसों के हार,

विजन विपिन में आज बावली
बिखराती हो क्यों श्रृंगार?

फूलों के उच्छ्वास बिछाकर
फैला फैला स्वर्ण-पराग,

विस्मृति सी तुम मादकता सी
गाती हो मदिरा सा राग;

जीवन का मधु बेच रही हो
मतवाली आँखों में घोल,

क्या लोगी? क्या कहा सजनि
'इसका दुखिया आँसू है मोल!'
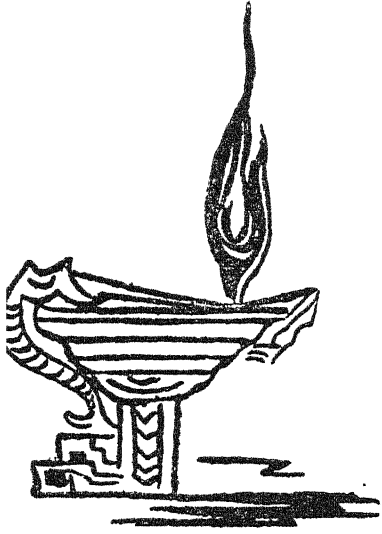
मूक करके मानस का ताप
सुलाकर वह सारा उन्माद,
जलाना प्राणों को चुपचाप
छिपाये रोता अन्तर्नाद;
कहाँ सीखी यह अद्भुत प्रीति ?
मुग्ध हे मेरे छोटे दीप!

चुराया अन्तस्तल में भेद
नहीं तुमको वाणी की चाह,
भस्म होते जाते हैं प्राण
नहीं मुख पर आती है आह,
मौन में सोता है संगीत—
लजीले मेरे छोटे दीप!

क्षार होता जाता है गात
वेदनाओं का होता अन्त,
किन्तु करते रहते हो मौन
प्रतीक्षा का आलोकित पन्थ,
सिखा दो ना नेही की रीति—
अनोखे मेरे नेही दीप!

पड़ी है पीड़ा संज्ञाहीन
साधना में डूबा उद्गार,
ज्वाल में बैठा हो निस्तब्ध
स्वर्ण बनता जाता है प्यार,
चिता है तेरी प्यारी मीत—
वियोगी मेरे बुझते दीप!

अनोखे से नेही के त्याग!
निराले पीड़ा के संसार!
कहाँ होते हो अन्तर्धान
लुटा अपना सोने सा प्यार?
कभी आयेगा ध्यान अतीत—
तुम्हें क्या निर्वाणोन्मुख दीप?

तरल आँसू की लड़ियाँ गूँथ
इन्हीं ने काटी काली रात,
निराशा का सूना निर्माल्य
चढ़ाकर देखा फीका प्रात!

इन्हीं पलकों ने कंटक हीन
किया था वह पथ हे बेपीर,
जहाँ से छूकर तेरे अंग
कभी आता था मन्द समीर!

सजग लखती थीं तेरी राह
सुलाकर प्राणों में अवसाद,
पलक प्यालों से पी पी देव!
मधुर आसव सी तेरी याद!

अशन जल्द का जल ही परिधान
रचा था बूंदों में संसार,
इन्हीं नीले तारों में मुग्ध
साधना सोती थी साकार!

आज आये हो हे करुणेश!
इन्हें जो तुम देने वरदान,
गलाकर मेरे सारे अंग
करो दो आँखों का निर्माण!

विस्मृति तिमिर में दीप हो
भवितव्य का उपहार हो,
बीते हुए का स्वप्न हो
मानव-हृदय का सार हो;

तुम सान्त्वना हो दैव की
तुम भाग्य का वरदान हो,
टूटी हुई झंकार हो
गतकाल की मुस्कान हो!

उस लोक का सन्देश हो
इस लोक का इतिहास हो,
भूले हुए का चित्र हो
सोई व्यथा का हास हो;

अस्थिर चपल संसार में
तुम हो प्रदर्शक संगिनी,
निस्सार मानस-कोष में
हो मंजु हीरक की कनी!

दुर्दैव ने उर पर हमारे
चित्र को अंकित किये,
देकर सजीला रंग तुमने
सर्वदा रंजित किए;

तुम हो सुधाधारा सदा
सूखे हुए अनुराग को,
तुम जन्म देती हो सजनि!
आसक्ति को वैराग्य को!

तेरे बिना संसार में
मानव-हृदय श्मशान है,
तेरे बिना हे संगिनी!
अनुराग का क्या मान है?

निठुर होकर डालेगा पीस
इसे अब सूनेपन का भार,
गला देगा पलकों में मूँद
इसे इन प्राणों का उद्‌गार,

खींच लेगा असीम के पार
इसे छलिया सपनों का हास,
बिखरते उच्छ्‌वासों के साथ
इसे बिखरा देगा नैराश्य!

सुनहरी आशाओं का छोर
बुलायेगा इसको अज्ञात,
किसी विस्मृत वीणा का राग
बना देगा इसको उद्‌भ्रान्त!

छिपेगी प्राणों में बन प्यास
घुलेगी आँखों में हो राग,
कहाँ फिर ले जाऊँ हे देव!
तुम्हारे उपहारों की याद?

गिरा जब हो जाती है मौन
देख भावों का पारावार,
तोलते हैं जब बेसुध प्राण
शून्य से करुणकथा का भार,
मौन बन जाता आकर्षण
वहीं मिलता नीरव भाषण!

जहाँ बनता पतझार वसन्त
जहाँ जागृति बनती उन्माद,
जहाँ मदिरा देती चैतन्य
भूलना बनता मीठी याद,
जहाँ मानस का मुग्ध मिलन
वहीं मिलता नीरव भाषण!

जहाँ विष देता है अमरत्व
जहाँ पीड़ा है प्यारी मीत,
अश्रु हैं नैनों का श्रृंगार
जहाँ ज्वाला बनती नवनीत,
मृत्यु बन जाती नवजीवन
वहीं रहता नीरव भाषण!

नहीं जिसमें अनन्त विच्छेद
बुझा पाता जीवन की प्यास,
करुण नयनों का संचित मौन
सुनाता कुछ अतीत की बात,
प्रतीक्षा बन जाती अञ्जन
वहीं मिलता नीरव भाषण!

पहन कर जब आँसू के हार
मुस्कराती वे पुतली श्याम,
प्राण में तन्मयता का हास
मांगता है पीड़ा अविराम,
वेदना बनती संजीवन
वहीं मिलता नीरव भाषण !

जहाँ मिलता पंकज का प्यार
जहाँ नभ में रहता आराध्य,
ढाल देना प्राणों में प्राण
जहाँ होती जीवन की साध,
मौन बन जाता आवाहन
वहीं रहता नीरव भाषण !

जहाँ है भावों का विनिमय
जहाँ इच्छाओं का संयोग,
जहाँ सपनों में है अस्तित्व
कामनाओं में रहता योग,
महानिद्रा बनता जीवन
वहीं मिलता नीरव भाषण !

जहाँ आशा बनती नैराश्य
राग बन जाता है उच्छ्वास,
मधुर वीणा है अन्तर्नाद
तिमिर में मिलता दिव्य प्रकाश;
हास बन जाता है रोदन
वहीं मिलता नीरव भाषण !

जिन चरणों पर देव लुटाते—
थे अपने अमरों के लोक,
नखचन्द्रों की कान्ति लजाती
थी नक्षत्रों के आलोक;
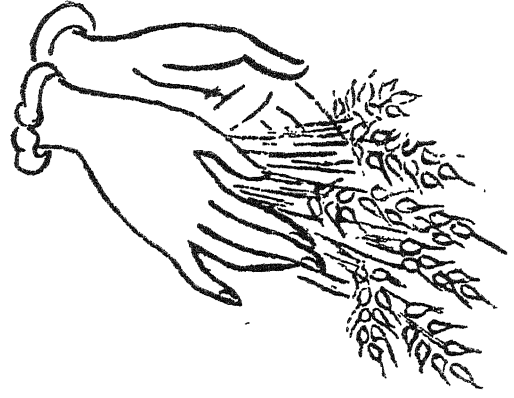
रवि-शशि जिन पर चढ़ा रहे थे
अपनी आभा अपना राज;
जिन चरणों पर लोट रहे थे
सारे सुख सुषमा के साज !

जिनकी रज धो धो जाता था
मेघों का मोती सा नीर,
जिनकी छबि अंकित कर लेता
नभ अपना अन्तस्तल चीर;

मैं भी भर झीने जीवन में
इच्छाओं के रुदन अपार,
जला वेदनाओं के दीपक
आई उस मन्दिर के द्वार !

क्या देता मेरा सूनापन
उनके चरणों को उपहार ?
बेसुध सी मैं धर आई
उन पर अपने जीवन की हार !

मधुमाते हो विहँस रहे थे
जो नन्दन कानन के फूल,
हीरक बनकर चमक गई
उनके अंचल में मेरी भूल !

उच्छ्वासों की छाया में
पीड़ा के आलिङ्गन में,
निश्वासों के रोदन में
इच्छाओं के चुम्बन में;

सूने मानस-मन्दिर में
सपनों की मुग्ध हँसी में,
आशा के आवाहन में
बीते की चित्रपटी में;

रजनी के अभिसारों में
नक्षत्रों के पहरों में,
ऊषा के उपहासों में
मुस्काती सी लहरों में !

उस थकी हुई सोती सी
ज्योत्स्ना की मृदु पलकों में,
बिखरी उलझी हिलती सी
मलयानिल की अलकों में;

जो बिखर पड़े निर्जन में
निर्भर सपनों के मोती,
मैं ढूँढ़ रही थी लेकर
धुँधली जीवन की ज्योती;

उस सूने पथ में अपने
पैरों की चाप छिपाये,
मेरे नीरव मानस में
वे धीरे धीरे आये !

मेरी मदिरा मधुवाली
आकर सारी ढुलका दी,
हँसकर पीड़ा से भर दी
छोटी जीवन की प्याली !

मेरी बिखरी वीणा के
एकत्रित कर तारों को,
टूटे सुख के सपने दे
अब कहते हैं गाने को !

यह मुरझाये फूलों का
फीका सा मुस्काना है,
यह सोती सी पीड़ा को
सपनों से ठुकराना है !

गोधूली के ओठों पर
किरणों का बिखराना है,
यह सूखी पंखड़ियों में
मारुत का इठलाना है !

इस मीठी सी पीड़ा में
डूबा जीवन का प्याला,
लिपटी सी उतराती है
केवल आँसू की माला !

मधुरिमा के, मधु के अवतार
सुधा से, सुषमा से, छविमान
आँसुओं में सहमे अभिराम
तारकों से हे मूक अजान!

सीख कर मुस्काने की बान
कहाँ आये हो कोमलप्राण ?

स्निग्ध रजनी से लेकर हास
रूप से भर कर सारे अङ्ग,
नये पल्लव का घूँघट डाल
अछूता ले अपना मकरन्द,

ढूंढ़ पाया कैसे यह देश;
स्वर्ग के हे मोहक सन्देश ?

रजत किरणों से नयन पखार
अनोखा ले सौरभ का भार,
छलकता लेकर मधु का कोष,
चले आये एकाकी पार;

कहो क्या आये हो पथ भूल
मञ्जु छोटे मुस्काते फूल ?

उषा के छू आरक्त कपोल
किलक पड़ता तेरा उन्माद,
देख तारों के बुझते प्राण
न जाने क्या आ जाता याद ?

हेरती है सौरभ की हाट
कहो किस निर्मोही की बाट ?

चाँदनी का शृंगार समेट
अधखुली आँखों की यह कोर,
लुटा अपना यौवन अनमोल
ताकती किस अतीत की ओर ?
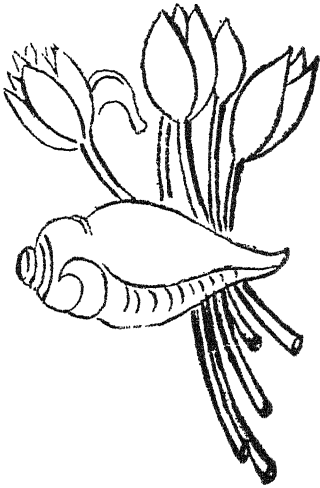
जानते हो यह अभिनव प्यार
किसी दिन होगा कारागार ?

कौन वह है सम्मोहन राग
खींच लाया तुमको सुकुमार ?
तुम्हें भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार ?

हँसो पहनो काँटों के हार
मधुर भोलेपन के संसार !

प्रथम प्रणय की सुषमा सा
यह कलियों की चितवन में कौन
कहता है 'मैंने सीखा उनकी?
आँखों से सस्मित मौन' !

घूंघट पट से झाँक सुनाते
अरुणा के आरक्त कपोल,
'जिसकी चाह तुम्हें है उसने
छिड़की मुझ पर लाली घोल' !

कहते हैं नक्षत्र 'पड़ी हम पर
उस माया की झाईं';
कह जाते वे मेघ 'हमीं उसकी—
करुणा की परछाईं'' !

वे मन्थर सी लोल हिलोरें
फैला अपने अंचल छोर,
कह जातीं 'उस पार बुलाता—
है हमको तेरा चितचोर' !

यह कैसी छलना निर्मम
कैसी तेरा निष्ठुर व्यापार !
तुम मन में हो छिपे मुझे
भटकाता है सारा संसार !
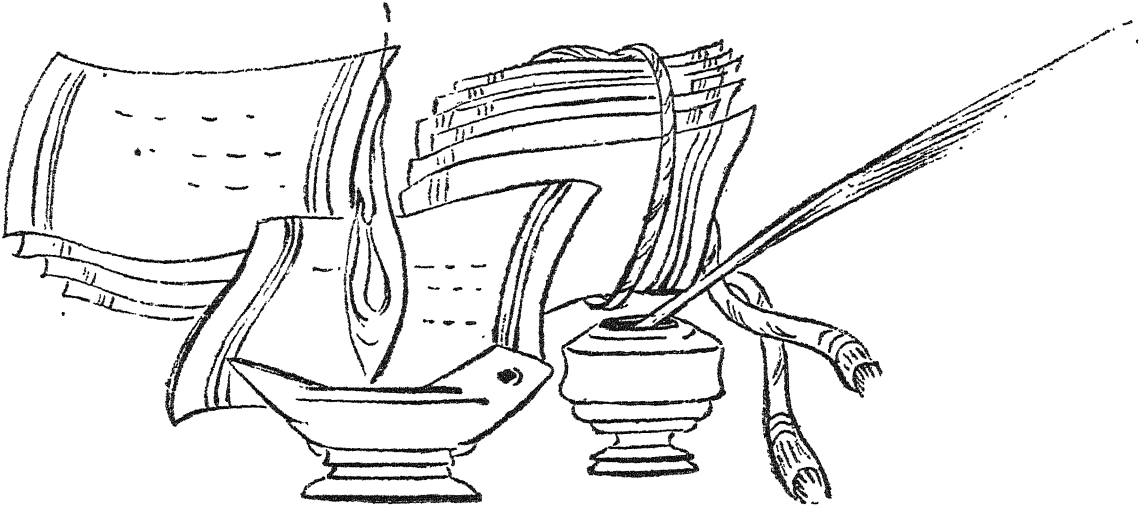
जो तुम आ जाते एक बार !

कितनी करुणा कितने सँदेश

पथ में बिछ जाते बन पराग,

गाता प्राणों का तार तार

अनुराग भरा उन्माद राग;

आँसू लेते वे पद पखार !

हँस उठते पल में आर्द्र नयन

धुल जाता ओठों से विषाद,

छा जाता जीवन में वसन्त

लुट जाता चिर संचित विराग;

आँखें देतीं सर्वस्व वार !

जिसमें नहीं सुवास नहीं जो
करता सौरभ का व्यापार,

नहीं देख पाता जिसकी
मुस्कानों को निष्ठुर संसार !

जिसके आँसू नहीं माँगते
मधुपों से करुणा की भीख,

मदिरा का व्यवसाय नहीं
जिसके प्राणों ने पाया सीख !

मोती वरसे नहीं न जिसको
छू पाई उन्मत्त बयार,

देखी जिसने हाट न जिस पर
ढुल जाता माली का प्यार !

चढ़ा न देवों के चरणों पर
गूँथा गया न जिसका हार,

जिसका जीवन बना न अवतक
उन्मादों का स्वप्नागार !

निर्जनता के किसी अंधेरे
कोने में छिपकर चुपचाप,

स्वप्नलोक की मधुर कहानी
कहता सुनता अपने आप !

किसी अपरिचित डाली से
गिरकर जो नीरस वन का फूल,

फिर पथ में बिछकर आँखों में
चुपके से भर लेता धूल !

उसी सुमन सा पल भर हँसकर
सूने में हो छिन्न मलीन,

झर जाने दो जीवन-माली
मुझको रहकर परिचय हीन !
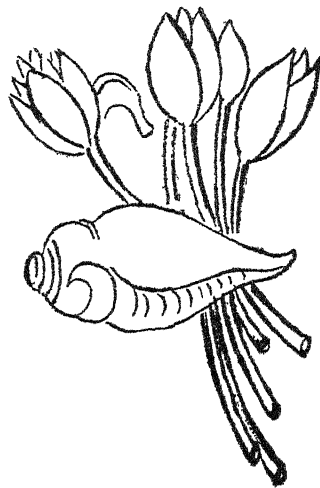
द्वितीय याम

रश्मि

।

रचना काल

१९२८-१९३१

चुभते ही तेरा अरुण बान !
बहते कन कन से फूट फूट,
मधु के निर्झर से सजल गान !

इन कनकरश्मियों में अथाह,
लेता हिलोर तम-सिन्धु जाग;
बुद्‍बुद् से बह चलते अपार,
उसमें विहगों के मधुर राग;
बनती प्रवाल का मृदुल कूल,
जो क्षितिज-रेख थी कुहर-म्लान !

नव कुन्द-कुसुम से मेघ-पुंज,
बन गए इन्द्रधनुषी वितान;
दे मृदु कलियों की चटक, ताल,
हिम-बिन्दु नचाती तरलप्राण;
धो स्वर्ण-प्रात में तिमिर-गात,
दुहराते अलि निशि—मूक तान !

सौरभ का फैला केश-जाल,
करतीं समीर-परियाँ विहार,
गीली केसर-मद झूम झूम,
पीते तितली के नव कुमार,
मर्मर का मधुसंगीत छेड़——
देते हैं हिल पल्लव अजान !

फैला अपने मृदु स्वप्न-पंख,
उड़ गई नींद-निशि क्षितिज पार,
अधखुले दृगों के कंज-कोष——
पर छाया विस्मृति का खुमार;
रँग रहा हृदय ले अश्रु-हास,
यह चतुर चितेरा सुधि-विहान !

किस सुधि-वसन्त का सुमन-तीर,
कर गया मुग्ध मानस अधीर !

वेदना-गगन से रजतओस,
चू चू भरती मन-कंज-कोष,
अलि सी मंडराती विरह-पीर !

मंजरित नवल मृदु देह-डाल,
खिल खिल उठता नव पुलक-जाल,
मधु-कन सा छलका नयन-नीर !

अधरों से झरता स्मित-पराग,
प्राणों में गूँजा नेह-राग,
सुख का बहता मलयज समीर !

घुल घुल जाता यह हिम-दुराव,
गा गा उठते चिर मूक भाव,
अलि सिहर सिहर उठता शरीर !

शून्यता में निद्रा की बन,
उमड़ आते ज्यों स्वप्निल घन,
पूर्णता कलिका की सुकुमार,
छलक मधु में होती साकार;

हुआ त्यों सूनेपन का भाव,
प्रथम किसके उर में अम्लान?
और किस शिल्पी ने अनजान,
विश्व-प्रतिमा कर दी निर्माण?

काल सीमा के संगम पर,
मोम सी पीड़ा उज्ज्वल कर,
उसे पहनाई अवगुण्ठन,
हास औ' रोदन से बुन बुन!

कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात,
मिटाता रँगता बारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार?

शून्य नभ में तम का चुम्बन,
जला देता असंख्य उडुगण,
बुझा क्यों उनको जाती मूक,
भोर ही उजियाले की फूंक?

रजतप्याले में निद्रा ढाल,
बाँट देती जो रजनी बाल,
उसे कलियों में आँसू घोल,
चुकाना पड़ता किसको मोल?

पोछती जब हौले से वात,
इधर निशि के आँसू अवदात,
उधर क्यों हँसता दिन का बाल,
अरुणिमा से रंजित कर गाल?

कली पर अलि का पहला गना
थिरकता जब बन मृदु मुस्कान,
विफल सपनों के हार पिघल
ढुलकते क्यों रहते प्रतिपल ?

गुलालों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप,
विहँसती सन्ध्या भरी सुहाग
दृगों से झरता स्वर्ण पराग;

उसे तम की बढ़ एक झकोर
उड़ा कर ले जाती किस ओर ?
अथक सुषमा का सृजन-विनाश
यही क्या जग का श्वासोच्छ्वास ?

किसी की व्यथा-सिक्त चितवन
जगाती कण कण में स्पन्दन,
गूंथ उनकी साँसों के गीत
कौन रचता विराट संगीत ?

प्रलय बनकर किसका अनुताप
डुबा जाता उसको चुपचाप ?

आदि में छिप आता अवसान
अन्त में बनता नव्य विधान,
सूत्र ही है क्या यह संसार
गुँथे जिसमें सुख-दुख जय-हार ?
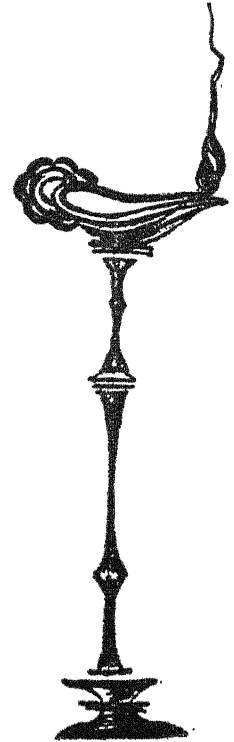
क्यों इन तारों को उलझाते ?
अनजाने ही प्राणों में क्यों
आ आ कर फिर जाते ?

पल में रागों को झंकृत कर,
फिर विराग का अस्फुट स्वर भर,

मेरी लघु जीवन-वीणा पर
क्या यह अस्फुट गाते ?

लय में मेरा चिर करुणा-धन,
कम्पन में सपनों का स्पन्दन,

गीतों में भर चिर सुख चिर दुख
कण कण में बिखराते !

मेरे शैशव के मधु में घुल,
मेरे यौवन के मद में ढुल,

मेरे आँसू स्मित में हिलमिल
मेरे क्यों न कहाते ?
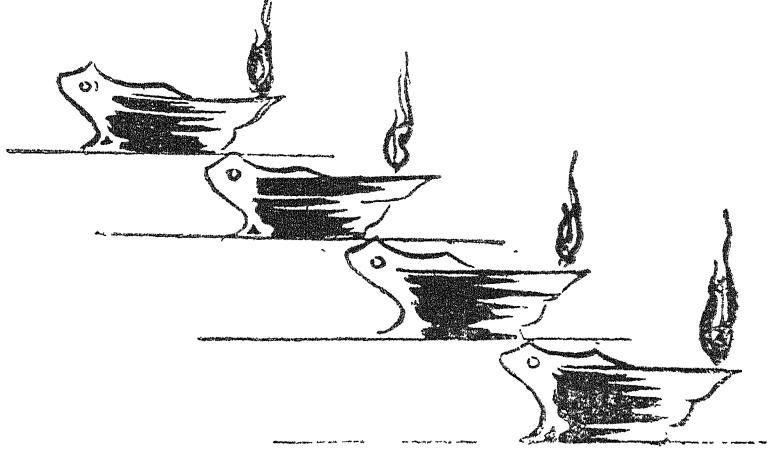
रजतरश्मियों की छाया में धूमिल घन सा वह आता;
इस निदाघ से मानस में करुणा के स्रोत बहा जाता !

उसमें मर्म छिपा जीवन का ,
एक तार अगणित कम्पन का ,
एक सूत्र सबके बन्धन का ,
संसृति के सूने पृष्ठों में करुणकाव्य वह लिख जाता !

वह उर में आता बन पाहुन ,
कहता मन से 'अब न कृपण बन',
मानस की निधियाँ लेता गिन ,
दृग-द्वारों को खोल विश्व-भिक्षुक पर, हँस बरसा आता !

यह जग है विस्मय से निर्मित ,
मूक पथिक आते जाते नित ,
नहीं प्राण प्राणों से परिचित ,
यह उनका संकेत नहीं जिसके बिन विनिमय हो पाता !

मृगमरीचिका के चिर पथ पर ,
सुख आता प्यासों के पग धर ,
रुद्ध हृदय के पट लेता कर ,
गर्वित कहता 'मैं मधु हूं मुझसे क्या पतझर का नाता' !

दुख के पद छू बहते झर झर ,
कण कण से आंसू के निर्झर ,
हो उठता जीवन मृदु उर्वर ,
लघु मानस में वह असीम जग को आमन्त्रित कर लाता !
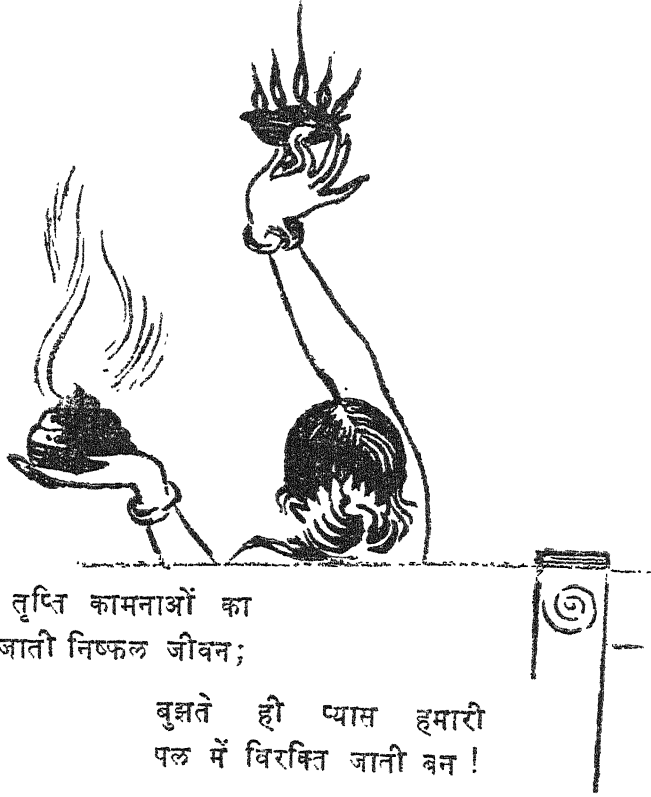
चिर तृप्ति कामनाओं का
कर जाती निष्फल जीवन;

बुझते ही प्यास हमारी
पल में विरक्ति जाती बन !

पूर्णता यही भरने की
ढुल, कर देना सूने घन;

सुख की चिर पूर्ति यही है
उस मधु से फिर जावे मन !

चिर ध्येय यही जलने का
ठंढी विभूति बन जाना;

है पीड़ा की सीमा यह
दुख का चिर सुख हो जाना !

मेरे छोटे जीवन में
देना न तृप्ति का कण भर;

रहने दो प्यासी आँखें
भरतीं आँसू के सागर !

चिर मिलन-विरह-पुलिनों की
सरिता हो मेरा जीवन ;

प्रतिपल होता रहता हो
युग कूलों का आलिङ्गन !

तुम रहो सजल आँखों की
सित-असित मुकुरता बन कर;

मैं सब कुछ तुम से देखूं
तुमको न देख पाऊं पर !

इस अचल क्षितिज-रेखा से
तुम रहो निकट जीवन के;

पर तुम्हें पकड़ पाने के
सारे प्रयत्न हों फीके !

द्रुत पंखोंवाले मन को
तुम अन्तहीन नभ होना;

युग उड़ जावें उड़ते ही
परिचित हो एक न कोना !

तुम अमर प्रतीक्षा हो, मैं
पग विरह-पथिक का धीमा;

आते जाते मिट जाऊँ
पाऊँ न पंथ की सीमा !

तुम मानस में बस जाओ
छिप दुख की अवगुण्ठन से,
मैं तुम्हें ढूंढ़ने के मिस
परिचित हो लूं कण कण से!

तुम हो प्रभात की चितवन
मैं विधुर निशा बन आऊं;
काटूँ वियोग-पल रोते
संयोग-समय छिप जाऊँ!

आवे बन मधुर मिलन-क्षण
पीड़ा की मधुर कसक सा;
हँस उठे विरह ओठों में
प्राणों में एक पुलक सा!

पाने में तुमको खोऊँ
खोने में समझूं पाना;
यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना!

गूँथें विषाद के मोती
चाँदी सी स्मित के डोरे;
हों मेरे लक्ष्य-क्षितिज की
आलोक-तिमिर दो छोरें!
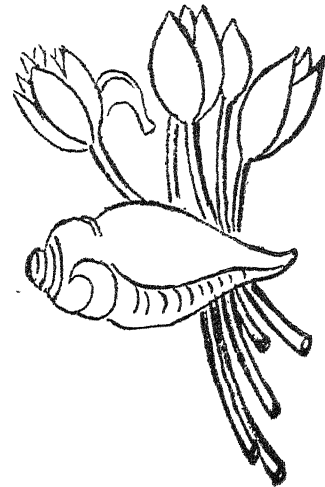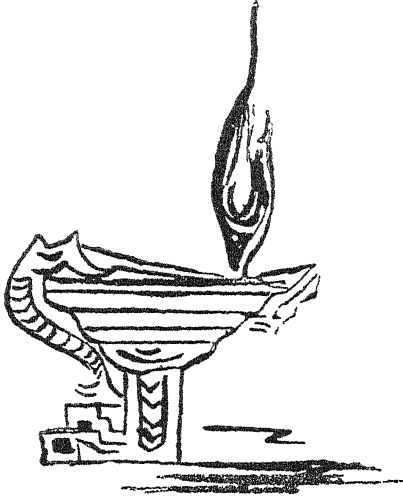
किन उपकरणों का दीपक,
किसका जलता है तेल ?
किसकी वर्ति, कौन करता
इसका ज्वाला से मेल ?

शून्य काल के पुलिनों पर--
आकर चुपके से मौन,
इसे बहा जाता लहरों में
वह रहस्यमय कौन ?

कुहरे सा धुंधला भविष्य है
है अतीत तम घोर;
कौन बता देगा जाता यह
किस असीम की ओर ?

पावस की निशि में जुगनू का--
ज्यों आलोक - प्रसार,
इस आभा में लगता तम का
और गहन विस्तार !

इन उत्ताल तरङ्गों पर सह--
झंझा के आघात,
जलना ही रहस्य है बुझना--
है नैसर्गिक बात !

कुमुद-दल से वेदना के दाग को
पोंछती जब आँसुओं से रश्मियाँ,
चौंक उठतीं अनिल के निश्वास छू
तारिकायें चकित सी अनजान सी;

तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत सा वह कौन है ?

शून्य नभ पर उमड़ जब दुखभार सी
नैश तम में, सघन छा जाती घटा,
बिखर जाती जुगनुओं की पाँति भी
जब सुनहले आँसुओं के हार सी;

तब चमक जो लोचनों को मूँदता
तड़ित् की मुस्कान में वह कौन है ?

अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती सा जलधि जब काँपता,
तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में;

सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
नींद के उच्छ्वास सा, वह कौन है ?

जब कपोल-गुलाब, पर शिशुप्रात के
सूखते नक्षत्र जल के बिन्दु से,
रश्मियों की कनक-धारा में नहा
मुकुल हँसते मोतियों का अर्घ्य दे;

स्वप्न-शाला में यवनिका डाल जो
तब दृगों को खोलता वह कौन है ?

तुहिन के पुलिनों पर छविमान
किसी मधुदिन की लहर समान,
स्वप्न की प्रतिमा पर अनजान
वेदना का ज्यों छाया-दान;

विश्व में यह भोला जीवन—
स्वप्न जागृति का मूक मिलन,
बांध अंचल में विस्मृति-धन
कर रहा किसका अन्वेषण ?

धूलि के कण में नभ सी चाह
बिन्दु में दुख का जलधि अथाह,
एक स्पन्दन में स्वप्न अपार
एक पल [illegible] का भार;

सांस में अनुतापों का दाह
कल्पना का अविराम प्रवाह,
यही तो हैं इसके लघु प्राण
शाप वरदानों के सन्धान !

भरे उर में छबि का मधुमास
दृगों में अश्रु अधर में हास,
ले रहा किसका पावस-प्यार
विपुल लघु प्राणों में अवतार ?

नील नभ का असीम विस्तार
अनल के धूमिल कण दो चार,
सलिल से निर्झर वीचि-विलास
मन्द मलयानिल से उच्छ्वास,

धरा से ले परमाणु उधार,
किया किसने मानव साकार?

दृगों में सोते हैं अज्ञात
निदाघों के दिन पावस-रात;
सुधा का मधु हाला का राग
व्यथा के घन अतृप्ति की आग!

छिपे मानस में पवि नवनीत
निमिष की गति निर्झर के गीत,
अश्रु की ऊर्म्मि हास का वात
कुहू का तम माधव का प्रात!

हो गये क्या उर में वपुमान
क्षुद्रता रज की नभ का मान,
स्वर्ग की छवि रौरव की छाँह
शीत हिम की बाड़व का दाह?

और—यह विस्मय का संसार
अखिल वैभव का राजकुमार,
धूलि में क्यों खिलकर नादान
उसी में होता अन्तर्धान?

काल के प्याले में अभिनव
ढाल जीवन का मधु-आसव,
नाश के हिम-अधरों से, मौन
लगा देता है आकर कौन ?

बिखर कर कन कन के लघुप्राण
गुनगुनाते रहते यह तान .
'अमरता है जीवन का ह्रास
मृत्यु जीवन का चरम विकास' ।

दूर है अपना लक्ष्य महान
एक जीवन पग एक समान;
अलक्षित परिवर्तन की डोर
खींचती हमें इष्ट की ओर !

छिपा कर उर में निकट प्रभात
गहनतम होती पिछली रात;
सघन वारिद अम्बर से छूट
सफल होते जल-कण में फूट !

स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार
दीप करता आलोक-प्रसार;
गला कर मृत्पिण्डों में प्राण
बीज करता असंख्य निर्माण!

सृष्टि का है यह अमिट विधान
एक मिटने में सौ वरदान,
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास
विफलता में है पूर्ति-विकास !

फूलों का गीला सौरभ पी
बेसुध सा हो मन्द समीर,
भेद रहे हों नैश तिमिर को
मेघों के बूंदों के तीर !

नीलम-मन्दिर की हीरक—
प्रतिमा सी हो चपला निस्पन्द,
सजल इन्दुमणि से जुगनू
बरसाते हों छवि का मकरन्द !

बुद्बुद् की लड़ियों में गूँथा
फैला श्यामल केश-कलाप
सेतु बांधती हो सरिता सुन-
सुन चकवी का मूक विलाप !

नव रहस्यमय चितवन से-
छू चौंका देना मेरे प्राण,
ज्यों असीम सागर करता है
भूले नाविक का आह्वान !

नव मेघों को रोता था
जब चातक का बालक मन,
इन आँखों में करुणा के
घिर घिर आते थे सावन !

किरणों को देख चुराते
चित्रित पंखों की माया,
पलकें आकुल होती थीं
तितली पर करने छाया !

जब अपनी निश्वासों से
तारे पिघलातीं रातें,
गिन गिन धरता था यह मन
उनके आँसू की पाँतें !

जो नव लज्जा जाती भर
नभ में कलियों में लाली,
वह मृदु पुलकों से मेरी
छलकाती जीवन-प्याली !

घिर कर अविरल मेघों से
जब नभमण्डल झुक जाता,
अज्ञात वेदनाओं से
मेरा मानस भर आता !

गर्जन के द्रुत तालों पर
चपला का बेसुध नर्तन,
मेरे मन-बालशिखी में
संगीत मधुर जाता बन !

किस भाँति कहूँ कैसे थे
वे जग से परिचय के दिन,
मिश्री सा घुल जाता था
मन छूते ही आँसू-कन !

अपनेपन की छाया तब
देखी न मुकुर-मानस ने,
उसमें प्रतिबिम्बित सबके
सुख-दुख लगते थे अपने !

तब सीमाहीनों से था
मेरी लघुता का परिचय,
होता रहता था प्रतिपल
स्मित का आँसू का विनिमय !

परिवर्तन-पथ में दोनों
शिशु से करते थे क्रीड़ा,
मन माँग रहा था विस्मय
जग माँग रहा था पीड़ा !

यह दोनों दो ओरें थीं
संसृति की चित्रपटी की,
उस बिन मेरा दुख सूना
मुझ बिन वह सुषमा फीकी !

किसने अनजाने आकर
वह लिया चुरा भोलापन ?
उस विस्मृति के सपने से
चौंकाया छूकर जीवन !

जाती नवजीवन बरसा
जो करुण घटा कण कण में,
निस्पन्द पड़ी सोती वह
अब मन के लघु बन्धन में !

स्मित बनकर नाच रहा है
अपना लघु सुख अधरों पर,
अभिनय करता पलकों में
अपना दुख आँसू बनकर !

अपनी लघु निश्वासों में
अपनी साधों की कम्पन,
अपने सीमित मानस में
अपने सपनों का स्पन्दन !

मेरा अपार वैभव ही
मुझसे है आज अपरिचित,
हो गया उदधि जीवन का
सिकता-कण में निर्वासित !

स्मित ले प्रभात आता नित
दीपक दे सन्ध्या जाती,
दिन ढलता सोना बरसा
निशि मोती दे मुस्काती !

अस्फुट मर्मर में, अपनी
गति की कलकल उलझाकर,
मेरे अनन्त पथ में नित-
संगीत बिछाते निर्झर !

यह साँसें गिनते गिनते
नभ की पलकें झप जातीं,
मेरे विरक्ति-अंचल में
सौरभ समीर भर जाती !

मुख जोह रहे हैं, मेरा
पथ में कब से चिर सहचर !
मन रोया ही करता क्यों
अपने एकाकीपन पर !

अपनी कण कण में बिखरीं
निधियाँ न कभी पहिचानी,
मेरा लघु अपनापन है
लघुता की अकथ कहानी !

मैं दिन को ढूँढ़ रही हूँ
जुगनू की उजियाली में,
मन माँग रहा है मेरा
सिकता हीरक-प्याली में
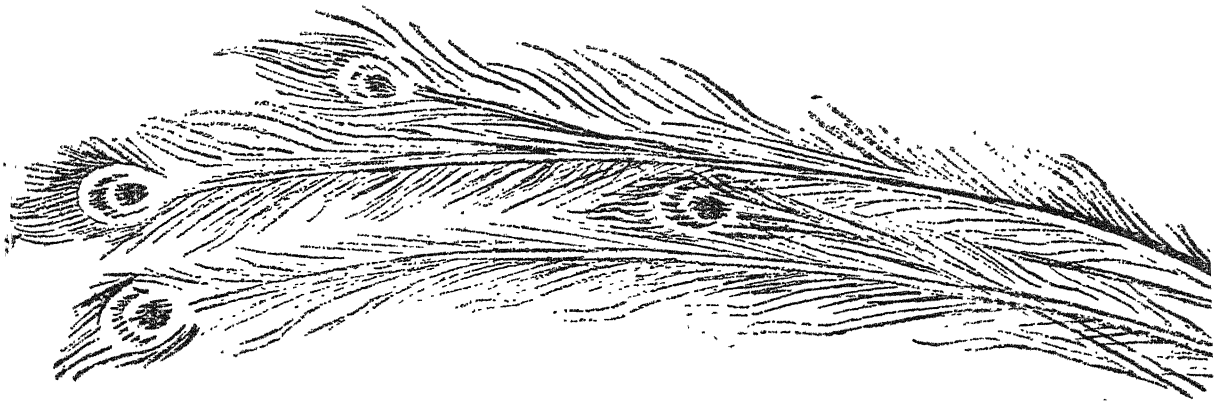
वे मधुदिन जिनकी स्मृतियों की
धुँधली रेखायें खोईं,
चमक उठेंगे इन्द्रधनुष से
मेरे विस्मृति के घन में !

झंझा की पहली नीरवता—
सी नीरव मेरी साधें,
भर देंगी उन्माद प्रलय का
मानस की लघु कम्पन में !

सोते जो असंख्य बुद्बुद् से
बेसुध सुख मेरे सुकुमार,
फूट पड़ेंगे दुखसागर की
सिहरी धीमी स्पन्दन में !

मूक हुआ जो शिशिर-निशा में
मेरे जीवन का संगीत,
मधु-प्रभात में भर देगा वह
अन्तहीन लय कण कण में !

स्मित तुम्हारी से छलक यह ज्योत्स्ना अम्लान ,
जान कब पाई हुआ उसका कहाँ निर्माण !

अचल पलकों में जड़ी सी तारिकायें दीन ,
ढूंढतीं अपना पता विस्मित निमेषविहीन !

गगन जो तेरे विशद अवसाद का आभास ,
पूछता 'किसने दिया यह नीलिमा का न्यास' !

निठुर क्यों फैला दिया यह उलझनों का जाल ,
आप अपने को जहाँ सब ढूँढते बेहाल !

काल-सीमा-हीन सूने में रहस्यनिधान !
मूर्तिमत् कर वेदना तुमने गढ़े जो प्राण ;

धूलि के कण में उन्हें बन्दी बना अभिराम,
पूछते हो अब अपरिचित से उन्हीं का नाम!

पूछता क्या दीप है आलोक का आवास?
सिन्धु को कब खोजने लहरें उड़ीं आकाश!

धड़कनों से पूछता है क्या हृदय पहचान?
क्या कभी कलिका रही मकरन्द से अनजान?

क्या पता देते घनों को वारि-बिन्दु असार?
क्या नहीं दृग जानते निज आँसुओं का भार?

चाह की मृदु उँगलियों ने छू हृदय के तार,
जो तुम्हीं में छेड़ दी मैं हूँ वही झंकार!

नींद के नभ में तुम्हारे स्वप्न-पावस-काल,
आँकता जिसको वही मैं इन्द्रधनु हूँ बाल!

तृप्ति-प्याले में तुम्हीं ने साध का मधु घोल,
है जिसे छलका दिया मैं वही बिन्दु अमोल!

तोड़ कर वह मुकुर जिसमें रूप करता लास,
पूछता आधार क्या प्रतिबिम्ब का आवास ?

उर्म्मियों में झूलता राकेश का आभास,
दूर होकर क्या नहीं है इन्दु के ही पास ?

इन हमारे आँसुओं में बरसते सविलास—
जानते हो क्या नहीं किसके तरल उच्छ्वास ?

इस हमारी खोज में इस वेदना में मौन,
जानते हो खोजता है पूर्ति अपनी कौन ?

यह हमारे अन्त उपक्रम यह पराजय जीत,
क्या नहीं रचता तुम्हारी साँस का संगीत ?

पूछते फिर किसलिए मेरा पता बेपीर !
हृदय की धड़कन मिली है क्या हृदय को चीर ?
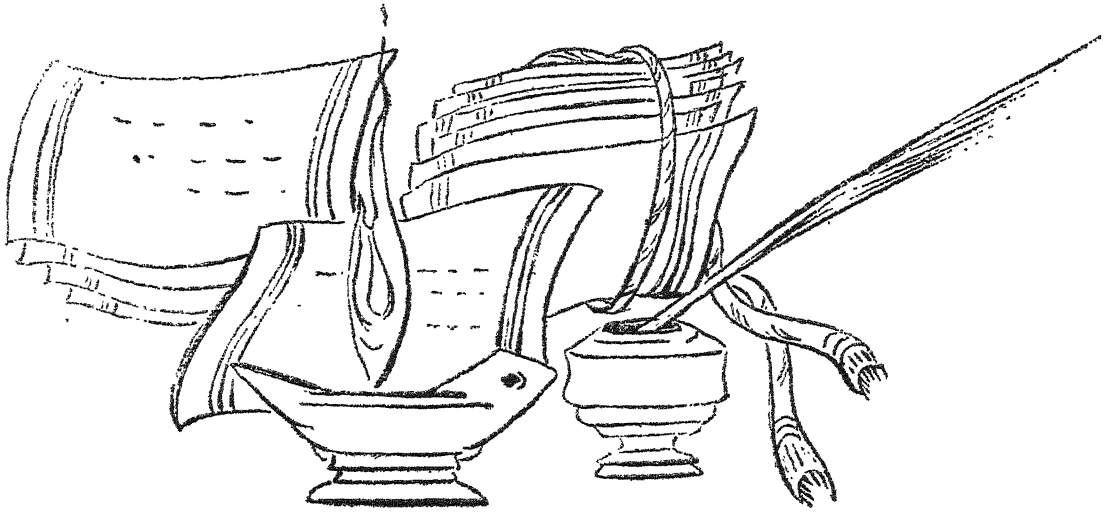
अलि अब सपने की बात—
हो गया है वह मधु का प्रात !

जब मुरली का मृदु पंचम स्वर,
कर जाता मन पुलकित अस्थिर,
कम्पित हो उठता सुख से भर,

नव लतिका सा गात !

जब उनकी चितवन का निर्झर,
भर देता मधु से मानस-सर,
स्मित से झरतीं किरणें झर झर,

पीते दृग-जलजात !

मिलन-इन्दु बुनता जीवन पर,
विस्मृति के तारों से चादर,
विपुल कल्पनाओं का मन्थर—

बहता सुरभित वात !

अब नीरव मानस-अलि-गुंजन,
कुसुमित मृदु भावों का स्पन्दन,
विरह-वेदना आई है बन—

तम-तुषार की रात !

किसी नक्षत्रलोक से टूट
विश्व के शतदल पर अज्ञात,
ढुलक जो पड़ी ओस की बूँद
तरल मोती सा ले मृदु गात,

नाम से जीवन से अनजान,
कहो क्या परिचय दे नादान !

किसी निर्मम कर का आघात
छेड़ता जब वीणा के तार,
अनिल के चल पंखों के साथ
दूर जो उड़ जाती झंकार,

जन्म ही उसे विरह की रात,
सुनावे क्या वह मिलन-प्रभात !

चाह शैशव सा परिचयहीन
पलक-दोलों में पलभर झूल,
कपोलों पर जो ढुल चुपचाप
गया कुम्हला आँखों का फूल,

एक ही आदि अन्त की साँस—
कहे वह क्या पिछला इतिहास !

मूक हो जाता वारिद-घोष
जगा कर जब सारा संसार,
गूँजती, टकराती असहाय
धरा से जो प्रतिध्वनि सुकुमार,

देश का जिसे न निज का भान,
बतावे क्या अपनी पहिचान !

सिन्धु को क्या परिचय दें देव
बिगड़ते बनते वीचि-विलास ?
क्षुद्र हैं मेरे बुद्‌बुद्‌-प्राण
तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश !

मुझे क्यों देते हो अभिराम !
थाह पाने का दुस्तर काम ?

जन्म ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूं उच्छ्वास;
चुरा लाया जो विश्व-समीर
वही पीड़ा की पहली सांस !

छोड़ क्यों देते बारम्बार,
मुझे तम से करने अभिसार ?

छिपा है जननी का अस्तित्व
रुदन में शिशु के अर्थविहीन ;
मिलेगा चित्रकार का ज्ञान
चित्र की ही जड़ता में लीन;

दृगों में छिपा अश्रु का हार,
सुभग है तेरा ही उपहार !
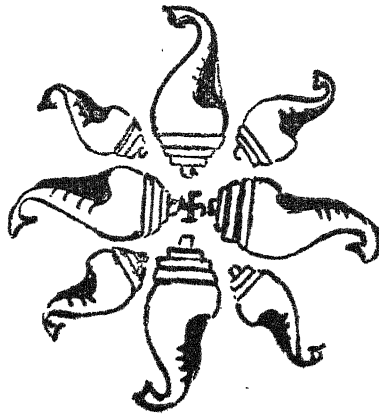
इन आँखों ने देखी न राह कहीं,
इन्हें धो गया नेह का नीर नहीं;
करती मिट जाने की साध कभी,
इन प्राणों को मूक अधीर नहीं;
अलि छोड़ी न जीवन की तरणी,
उस सागर में जहाँ तीर नहीं !
कभी देखा नहीं वह देश जहाँ,
प्रिय से कम मादक पीर नहीं !

जिसको मरुभूमि समुद्र हुआ,
उस मेघव्रती की प्रतीति नहीं;
जो हुआ जल दीपकमय उससे
कभी पूछी निबाह की रीति नहीं;
मतवाले चकोर से सीखी कभी,
उस प्रेम के राज्य की नीति नहीं;
तू अकिंचन भिक्षुक है मधु का,
अलि तृप्ति कहाँ जब प्रीति नहीं !

पथ में नित स्वर्ण-पराग बिछा,
तुझे देख जो फूली समाती नहीं,
पलकों से दलों में घुला मकरन्द,
पिलाती कभी अनखाती नहीं;
किरणों में गुँथीं मुक्तावलियाँ,
पहनाती रही सकुचाती नहीं;
अब भूल गुलाब में पंकज की,
अलि कैसे तुझे सुधि आती नहीं !

करते करुणा-घन छाँह वहाँ,
झुलसाता निदाघ सा दाह नहीं,
मिलती शुचि आँसुओं की सरिता,
मृगवारि का सिन्धु अथाह नहीं;
हँसता अनुराग का इन्दु सदा,
छलना की कुहू का निबाह नहीं;
फिरता अलि भूल कहाँ भटका,
यह प्रेम के देश की राह नहीं !

दिया क्यों जीवन का वरदान ?

इसमें है स्मृतियों का कम्पन;
सुप्त व्यथाओं का उन्मीलन;
स्वप्नलोक की परियाँ इसमें
भूल गईं मुस्कान !

इसमें है झंझा का शैशव;
अनुरंजित कलियों का वैभव;
मलयपवन इसमें भर जाता
मृदु लहरों के गान !

इन्द्रधनुष सा घन-अंचल में;
तुहिन-बिन्दु सा किसलय दल में;
करता है पल पल में देखो
मिटने का अभिमान !

सिकता में अंकित रेखा सा;
वात-विकम्पित दीपशिखा सा;
काल-कपोलों पर आँसू सा
ढुल जाता हो म्लान !

सजनि कौन तम में परिचित सा, सुधि सा, छाया सा, आता ?
सूने में सस्मित चितवन से जीवन-दीप जला जाता !

छू स्मृतियों के बाल जगाता,
मूक वेदनायें दुलराता,
हृत्तन्त्री में स्वर भर जाता,

बन्द दृगों में, चूम सजल सपनों के चित्र बना जाता !

पलकों में भर नवल नेह-कन,
प्राणों में पीड़ा की कसकन,
श्वासों में आशा की कम्पन,

सजनि ! मूक बालक मन को फिर आकुल क्रन्दन सिखलाता !

घन तम में सपने सा आकर,
अलि कुछ करुण स्वरों में गाकर,
किसी अपरिचित देश बुलाकर,

पथ-व्यय के हित अंचल में कुछ बाँध अश्रु के कन जाता !
सजनि कौन तम में परिचित सा सुधि सा छाया सा आता ?

कह दे माँ क्या अब देखूँ !

देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को,
तेरी चिर यौवन-सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ !

देखूँ हिम-हीरक हँसते
हिलते नीले कमलों पर,
या मुरझाईं पलकों से
झरते आँसू-कण देखूँ !

सौरभ पी पी कर बहता
देखूँ यह मन्द समीरण,
दुख की घूँटें पीती या
ठंढी साँसों को देखूँ !

खेलूँ परागमय मधुमय
तेरी वसन्त-छाया में,
या झुलसे सन्तापों से
प्राणों का पतझर देखूँ !

मकरन्द-पगी केसर पर
जीती मधु-परियाँ ढूँढूँ,
या उर-पञ्जर में कण को
तरसे जीवन-शुक देखूँ !

कलियों की घन जाली में
छिपती देखूँ लतिकायें,
या दुर्दिन के हाथों में
लज्जा की करुणा देखूँ !

बहलाऊँ नव किसलय के--
झूले में अलि-शिशु तेरे,
पाषाणों में मसले या
फूलों से शैशव देखूँ !

तेरे असीम आँगन की
देखूँ जगमग दीवाली,
या इस निर्जन कोने के
बुझते दीपक को देखूँ !

देखूँ विहगों का कलरव
घुलता जल की कलकल में,
निस्पन्द पड़ी वीणा से
या बिखरे मानस देखूँ !

मृदु रजत-रश्मियाँ देखूँ
उलझी निद्रा-पंखों में,
या निर्निमेष पलकों में
चिन्ता का अभिनय देखूँ !

तुझ में अम्लान हँसी है
इसमें अजस्र आँसू-जल,
तेरा वैभव देखूँ या
जीवन का क्रन्दन देखूँ !
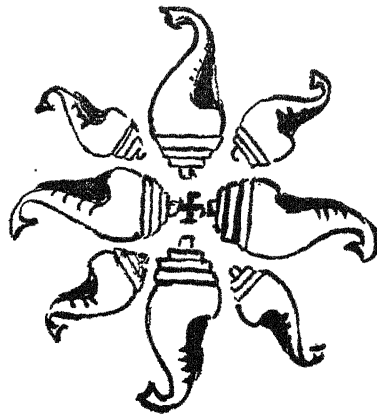
तुम हो विधु के बिम्ब और मैं
मुग्धा रश्मि अजान,
जिसे खींच लाते अस्थिर कर
कौतूहल के बाण !

कलियों के मृदु प्यालों से जो
करती मधुमद पान,
झाँक, जला देती नीड़ों में
दीपक सी मुस्कान !

लोल तरंगों के तालों पर
करती बेसुध लास;
फैलाती तम के रहस्य पर
आलिङ्गन का पाश;

ओस-धुले पथ में छिप तेरा
जब आता आह्वान,
भूल अधूरा खेल तुम्हीं में
होती अन्तर्धान !

तुम अनन्त जलराशि ऊर्म्मि मैं
चंचल सी अवदात,
अनिल-निपीड़ित जा गिरती जो
कूलों पर अज्ञात;

हिम-शीतल अधरों से छूकर
तप्त कणों की प्यास,
बिखराती मंजुल मोती से
बुद्बुद् में उल्लास,

देख तुम्हें निस्तब्ध निशा में
करते अनुसन्धान,
श्रान्त तुम्हीं में सो जाते जा
जिसके बालक प्राण !

तुम परिचित ऋतुराज मूक में
मधुश्री कोमलगात,
अभिमन्त्रित कर जिसे सुलाती
आ तुषार की रात;

पीत पल्लवों में सुन तेरी
पदध्वनि उठती जाग,
फूट फूट पड़ता किसलय मिस
चिरसंचित अनुराग;

मुखरित कर देता मानस-पिक
तेरा चितवन-प्रात,
छू मादक निश्वास पुलक—
उठते रोओं से पात !

फूलों में मधु से लिखती जो
मधुघड़ियों के नाम,
भर देती प्रभात का अंचल
सौरभ से बिन दाम;

'मधु जाता अलि' जब कह जाती
आ सन्तप्त बयार,
मिल तुझमें उड़ जाता जिसका
जागृति का संसार !

स्वरलहरी में मधुर स्वप्न की
तुम निद्रा के तार,
जिसमें होता इस जीवन का
उपक्रम उपसंहार;

पलकों से पलकों पर उड़कर
तितली सी अम्लान,
निद्रित जग पर बुन देती जो
लय का एक वितान;

मानस-दोलों में सोती शिशु
इच्छायें अनजान,
उन्हें उड़ा देती नभ में दे
द्रुत पंखों का दान !

सुखदुख की मरकत-प्याली से
मधु-अतीत कर पान,
मादकता की आभा से छा
लेती तम के प्राण;

जिसकी साँसें छू हो जाता
छायाजग वपुमान,
शून्य निशा में भटके फिरते
सुधि के मधुर विहान;

इन्द्रधनुप के रङ्गों से भर
धुँधले चित्र अपार,
देती रहती चिर रहस्यमय
भावों को आकार !

जब अपना सङ्गीत सुलाते
थक वीणा के तार,
घुल जाता उसका प्रभात के
कुहरे सा संसार !

तुम असीम विस्तार ज्योति के
मैं तारक सुकुमार,
तेरी रेखारूपहीनता
है जिसमें साकार !

फूलों पर नीरव रजनी के
शून्य पलों के भार,
पानी करते रहते जिसके
मोती के उपहार;

जब समीर-यानों पर उड़ते
मेघों, के लघु बाल,
उनके पथ पर जो बुन देता
मृदु आभा के जाल;

जो रहता तम के मानस में
ज्यों पीड़ा का दाग,
आलोकित करता दीपक सा
अन्तर्हित अनुराग!

जब प्रभात में मिट जाता
छाया का कारागार,
मिल दिन में असीम हो जाता
जिसका लघु आकार!

मैं तुमसे हूँ एक, एक हैं
जैसे रश्मि प्रकाश,
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों
घन से तड़ित्-विलास;

मुझे बाँधने आते हो लघु
सीमा में चुपचाप,
कर पाओगे भिन्न कभी क्या
ज्वाला से उत्ताप?

[illegible] से जिस दिन मूक,
पड़े थे स्वप्न-नीड़ में प्राण;
अपरिचित थी विस्मृति की रात,
नहीं देखा था स्वर्णविहान !

रश्मि बन तुम आये चुपचाप,
सिखाने अपने मधुमय गान;
अचानक दीं वे पलकें खोल,
हृदय में वेध व्यथा का बान—

हुए फिर पल में अन्तर्धान !

रँग रही थी सपनों के चित्र,
हृदय-कलिका मधु से सुकुमार;
अनिल बन सौ सौ बार दुलार,
तुम्हीं ने खुलवाये उर-द्वार;

—और फिर रहे न एक निमेष,
लुटा चुपके से सौरभ-भार;
रह गई पथ में बिछ कर दीन,
दृगों की अश्रुभरी मनुहार—

मूक प्राणों की विफल पुकार !

विश्व-वीणा में कब से मूक
पड़ा था मेरा जीवन-तार;
न मुखरित कर पाई झकझोर—
थक गई सौ सौ मलयबयार !

तुम्हीं रचते अभिनव सङ्गीत,
कभी मेरे गायक इस पार;
तुम्हीं ने कर निर्मम आघात
छेड़ दी यह बेसुर झंकार—

और उलझा डाले सब तार !
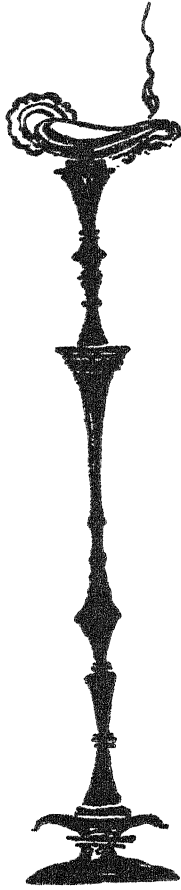
न थे जब परिवर्तन दिनरात,
नहीं आलोक-तिमिर थे ज्ञात;
व्याप्त क्या सूने में सब ओर,
एक कम्पन थी एक हिलोर ?

न जिसमें स्पन्दन था न विकार,
न जिसका आदि न उपसंहार;
सृष्टि के आदि आदि में मौन,
अकेला सोता था वह कौन ?

स्वर्ण-लूता सी कब सुकुमार,
हुई उसमें इच्छा साकार ?
उगल जिसने तिनरङ्गे तार,
बुन लिया अपना ही संसार !

बदलता इन्द्रधनुष सा रङ्ग,
सदा वह रहा नियति के सङ्ग;
नहीं उसको विराम विश्राम,
एक बनने मिटने का काम !

सिन्धु की जैसे तप्त उसाँस,
दिखा नभ में लहरों सा लास,
घात प्रतिघातों की खा चोट,
अश्रु बन फिर आ जाती लौट !

बुलबुले मृदु उर के से भाव,
रश्मियों से कर कर अपनाव,
यथा हो जाते जलमयप्राण—
उसी में आदि वही अवसान !

धरा की जड़ता उर्वर बन,
प्रकट करती अपार जीवन;
उसी में मिलते वे द्रुततर,
सींचने क्या नवीन अंकुर ?

मृत्यु का प्रस्तर-सा उर चीर,
प्रवाहित होता जीवन-नीर;
चेतना से जड़ का बन्धन,
यही संसृति की हृत्कम्पन !

विविध रङ्गों के मुकुर सँवार,
जड़ा जिसने यह कारागार,
बना क्या बन्दी वही अपार,
अखिल प्रतिबिम्बों का आधार ?

वक्ष पर जिसके जल उडुगण,
बुझा देते असंख्य जीवन;
कनक औ' नीलम-यानों पर,
दौड़ते जिस पर निशि-वासर;

पिघल गिरि से विशाल बादल,
न कर सकते जिसको चंचल;
तडित् की ज्वाला घन-गर्जन,
जगा पाते न एक कम्पन;

उसी नभ सा क्या वह अविकार—
और परिवर्तन का आधार ?
पुलक से उठ जिसमें सुकुमार,
लीन होते असंख्य संसार !
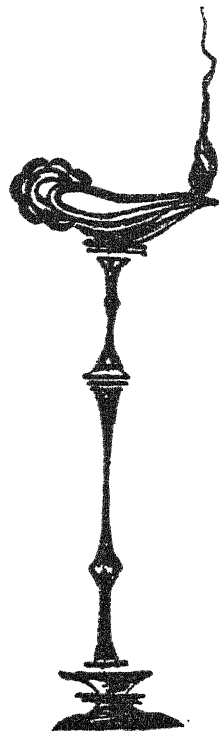
कहीं से, आई हूँ कुछ भूल !

कसक कसक उठती सुधि किसकी ?
रुकती सी गति क्यों जीवन की ?
क्यों अभाव छाये लेता
विस्मृति-सरिता के कूल ?

किसी अश्रुमय घन का हूँ कन,
टूटी स्वर-लहरी की कम्पन,
या ठुकराया गिरा धूलि में
हूँ मैं नभ का फूल !

दुख का युग हूँ या सुख का पल,
करुणा का घन या मरु निर्जल,
जीवन क्या है मिला कहाँ
सुधि भूली आज समूल !

प्याले में मधु है या आसव,
बेहोशी है या जागृति नव,
बिन जाने पीना पड़ता है
ऐसा विधि प्रतिकूल !

अलि कैसे उनको पाऊँ ?

वे आँसू बनकर मेरे,
इस कारण ढुल ढुल जाते,

इन पलकों के बन्धन में,
मैं बाँध बाँध पछताऊँ !

मेघों में विद्युत् सी छबि,
उनकी बनकर मिट जाती,

आँखों की चित्रपटी में,
जिसमें मैं आँक न पाऊँ !

वे आभा बन खो जाते,
शशिकिरणों की उलझन में,

जिसमें उनको कण कण में,
ढूँढूँ पहिचान न पाऊँ !

सोते, सागर की धड़कन—
बन, लहरों की थपकी से,

अपनी यह करुण कहानी,
जिसमें उनको न सुनाऊँ !

वे तारक-बालाओं की,
अपलक चितवन बन आते,

जिसमें उनकी छाया भी,
मैं छू न सकूँ अकुलाऊँ !

वे चुपके से मानस में,
आ छिपते उच्छ्वासें बन,

जिसमें उनको साँसों में,
देखूँ पर रोक न पाऊँ !

वे स्मृति बनकर मानस में,
खटका करते हैं निशिदिन,

उनकी इस निष्ठुरता को,
जिसमें मैं भूल न जाऊँ !

अश्रु ने सीमित कणों में बाँध ली,
　　क्या नहीं घन सी तिमिर सी वेदना ?
क्षुद्र तारों से पृथक् संसार में,
　　क्या कहीं अस्तित्व है झंकार का ?

यह क्षितिज को चूमनेवाला जलधि,
　　क्या नहीं नादान लहरों से बना ?
क्या नहीं लघु वारि-बूँदों में छिपी,
　　वारिदों की गहनता गम्भीरता ?

विश्व में वह कौन सीमाहीन है ?
　　हो न जिसका खोज सीमा में मिला !
क्यों रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं,
　　क्या तुम्हीं सर्वेश एक महान हो ?

छिपाये थी कुहरे सी नींद,
काल का सीमा का विस्तार;
एकता में अपनी अनजान,
समाया था सारा संसार!

मुझे उसकी है धुँधली याद,
बैठ जिस सूनेपन के कूल;
मुझे तुमने दी जीवनबीन,
प्रेमशतदल का मैंने फूल!

उसी का मधु से सिक्त पराग,
और पहला वह सौरभ-भार;
तुम्हारे छूते ही चुपचाप,
हो गया था जग में साकार!

—और तारों पर उँगली फेर,
छेड़ दी मैंने जो झंकार;
विश्व-प्रतिमा में उसने देव!
कर दिया जीवन का संचार!

हो गया मधु से सिन्धु अगाध,
रेणु से वसुधा का अवतार;
हुआ सौरभ से नभ वपुमान,
और कम्पन से बही बयार;

उसी में घड़ियाँ पल अविराम,
पुलक से पाने लगे विकास;
दिवस रजनी तम और प्रकाश,
बन गए उसके श्वासोच्छ्वास!

उसे तुमने सिखलाया हास,
पिन्हाये मैं ने आँसू-हार;
दिया तुमने सुख का साम्राज्य,
वेदना का मैं ने अधिकार!

वही कौतुक--रहस्य का खेल,
बन गया है असीम अज्ञात;
हो गई उसकी स्पन्दन एक,
मुझे अब चकवी की चिर रात!

तुम्हारी चिर परिचित मुस्कान,
भ्रान्त से कर जाती लघु प्राण;
तुम्हें प्रतिपल कण कण में देख,
नहीं अब पाते हैं पहिचान!

कर रहा है जीवन सुकुमार,
उलझनों का निष्फल व्यापार;
पहेली की करते हैं सृष्टि,
आज प्रतिपल साँसों के तार!

विरह का तम हो गया अपार,
मुझे अब वह आदान प्रदान;
बन गया है देखो अभिशाप,
जिसे तुम कहते थे वरदान!

तेरी आभा का कण नभ को,
देता अगणित दीपक दान;
दिन को कनकराशि पहनाता,
विधु को चाँदी सा परिधान;

करुणा का लघु बिन्दु युगों से,
भरता छलकाता नव घन;
समा न पाता जग के छोटे,
प्याले में उसका जीवन !

तेरी महिमा की छाया-छबि,
छू होता वारीश अपार;
नील गगन पा लेता घन सा,
तम सा अन्तहीन विस्तार;

सुषमा का कण एक खिलाता,
राशि राशि फूलों के वन;
शत शत झंझावात प्रलय-
बनता पल में भ्रू-सञ्चालन !
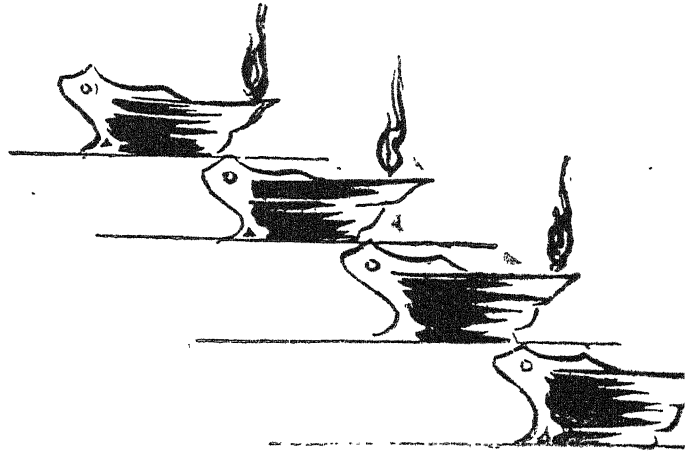
सच है कण का पार न पाया,
बन बिगड़े असंख्य संसार;
पर न समझना देव हमारी—
लघुता है जीवन की हार !

लघु प्राणों के कोने में,
खोई असीम पीड़ा देखो;
आओ हे निस्सीम ! आज
इस रजकण की महिमा देखो !

जिसको अनुराग सा दान दिया,
उससे कण मांग लजाता नहीं;
अपनापन भूल समाधि लगा,
यह पी का विहाग भुलाता नहीं;
नभ देख पयोधर श्याम घिरा,
मिट क्यों उसमें मिल जाता नहीं ?
वह कौन सा पी है पपीहा तेरा,
जिसे बाँध हृदय में बसाता नहीं ?

उसको अपना करुणा से भरा,
उर-सागर क्यों दिखलाता नहीं ?
संयोग वियोग की घाटियों में,
नव नेह में बाँध झुलाता नहीं !
सन्ताप के संचित आँसुओं से,
नहला के उसे तू घुलाता नहीं;
अपने तम-श्यामल पाहुन को,
पुतली की निशा में सुलाता नहीं !

कभी देख पतङ्ग को जो दुख से
निज, दीपशिखा को रुलाता नहीं;
मिल ले उस मीन से जो जल की,
निठुराई विलाप में गाता नहीं;
कुछ सीख चकोर से जो चुगता,
अङ्गार, किसी को सुनाता नहीं;
अब सीख ले मौन का मन्त्र नया,
यह पी पी घनों को सुहाता नहीं !

विश्व-जीवन के उपसंहार !

तू जीवन में छिपा वेणु में ज्यों ज्वाला का वास,
तुझ में मिल जाना ही है जीवन का चरम विकास,

पतझर बन जग में कर जाता
नव वसन्त संचार !

मधु में भीने फूल प्राण में भर मदिरा सी चाह,
देख रहे अविराम तुम्हारे हिम-अधरों की राह,

मुरझाने के मिस देते तुम
नव शैशव उपहार !

कलियों में सुरभित कर अपने मृदु आँसू अवदात,
तेरे मिलन-पंथ में गिन गिन पग रखती है रात,

नवछबि पाने हो जाती मिट
तुझ में एकाकार !

क्षीण शिखा से तम में लिख बीती घड़ियों के नाम,
तेरे पथ में स्वर्णरेणु फैलाता दीप ललाम,
उज्ज्वलतम होता तुझ से ले
मिटने का अधिकार !

घुलनेवाले मेघ अमर जिनकी कण कण में प्यास,
जो स्मृति में है अमिट वही मिटनेवाला मधुमास–
तुझ बिन हो जाता जीवन का
सारा काव्य असार !

इस अनन्त पथ में संसृति की साँसें करतीं लास,
जाती हैं असीम होने मिट कर असीम के पास,
कौन हमें पहुँचाता तुझ बिन
अन्तहीन के पार ?

चिर यौवन पा सुषमा होती प्रतिमा सी अम्लान,
चाह चाह थक थक कर हो जाते प्रस्तर से प्राण,
सपना होता विश्व हासमय
आँसूमय सुकुमार !
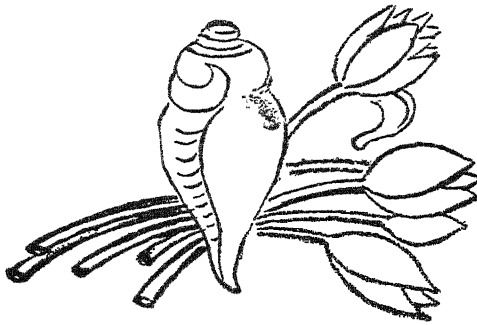
प्राणों के अन्तिम पाहुन !

चाँदनी-धुला, अंजन सा, विद्युत्-मुस्कान बिछाता,
सुरभित समीर-पंखों से उड़ जो नभ में घिर आता,

वह वारिद तुम आना बन !

ज्यों श्रान्त पथिक पर रजनी छाया सी आ मुस्काती,
भारी पलकों में धीरे निद्रा का मधु ढुलकाती,

त्यों करना बेसुध जीवन !

अज्ञातलोक से छिप छिप ज्यों उतर रश्मियाँ आतीं,
मधु पीकर प्यास बुझाने फूलों के उर खुलवातीं,

छिप आना तुम छायातन !

हिम से जड़ नीला अपना निस्पन्द हृदय ले आना,
मेरा जीवन-दीपक धर उसको सस्पन्द बनाना,

हिम होने देना यह तन !

कितनी करुणाओं का मधु कितनी सुषमा की लाली,
पुतली में छान भरी है मैंने जीवन की प्याली,

पी कर लेना शीतल मन !

कितने युग बीत गए इन निधियों का करते संचय,
तुम थोड़े से आँसू दे इन सबको कर लेना क्रय,

अब हो व्यापार-विसर्जन !

है अन्तहीन लय यह जग पल पल है मधुमय कम्पन,
तुम इसकी स्वरलहरी में धोना अपने श्रम के कण,

मधु से भरना सूनापन !

पाहुन से आते जाते कितने सुख के दुख के दल,
वे जीवन के क्षण क्षण में भरते असीम कोलाहल,

तुम बन आना नीरव क्षण !

तेरी छाया में दिव को हँसता है गर्वीला जग,
तू एक अतिथि जिसका पथ हैं देख रहे अगणित दृग,

साँसों में घड़ियाँ गिन गिन !

नींद में सपना बन अज्ञात !
गुदगुदा जाते हो जब प्राण,
ज्ञात होता हँसने का मर्म
तभी तो पाती हूँ यह जान,

प्रथम छू कर किरणों की छाँह
मुस्करातीं कलियाँ क्यों प्रात,
समीरण का छूकर चल छोर
लोटते क्यों हँस हँस कर पात !

प्रथम जब भर आतीं चुपचाप
मोतियों से आँखें नादान,
आँकती तब आँसू का मोल
तभी तो आ जाता यह ध्यान,

घुमड़ घिर क्यों रोते नव मेघ
रात बरसा जाती क्यों ओस,
पिघल क्यों हिम का उर अवदात
भरा करता सरिता के कोष !

मधुर अपने स्पन्दन का राग
मुझे प्रिय जब पड़ता पहिचान !
ढूँढ़ती तब जग में संगीत
प्रथम होता उर में यह भान,

वीचियों पर गा करुण विहाग
सुनाता किसको पारावार,
पथिक सा भटका फिरता वात
लिए क्यों स्वरलहरी का भार !

हृदय में खिल कलिका सी चाह
दृगों को जब देती मधुदान,
छलक उठता पुलकों से गात
जान पाता तब मन अनजान,

गगन में हँसता देख मयंक
उमड़ती क्यों जलराशि अपार,
पिघल चलते विधुमणि के प्राण
रश्मियाँ छूते ही सुकुमार !

देख वारिद की धूमिल छाँह
शिखी-शावक क्यों होता भ्रान्त,
शलभ-कुल नित ज्वाला से खेल
नहीं फिर भी क्यों होता श्रान्त !
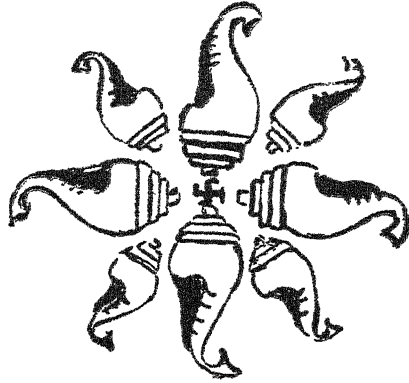
चुका पायेगा कैसे बोल !
मेरा निर्धन सा जीवन तेरे वैभव का मोल !

अंचल में मधु भर जो लातीं,
मुस्कानों में अश्रु बसातीं,
बिन समझे जग पर लुट जातीं,
उन कलियों को कैसे ले यह फीकी स्मित बेमोल !

लक्ष्यहीन सा जीवन पाते,
घुल औरों की प्यास बुझाते,
अणुमय हो जगमय हो जाते,
जो वारिद उनमें मत मेरा लघु आँसू-कन घोल !

भिक्षुक बन सौरभ ले आता,
कोने कोने में पहुँचाता,

सूने में संगीत बहाता,

जो समीर उससे मत मेरी निष्फल साँसें तोल !

जो अलसाया विश्व सुलाते,
बुन मोती का जाल उढ़ाते,

थकते पर पलकें न लगाते,

क्यों मेरा पहरा देते वे तारक आँखें खोल ?

पाषाणों की शय्या पाता,
उस पर गीले गान बिछाता,

नित गाता, गाता ही जाता,

जो निर्झर उसको देगा क्या मेरा जीवन लोल ?
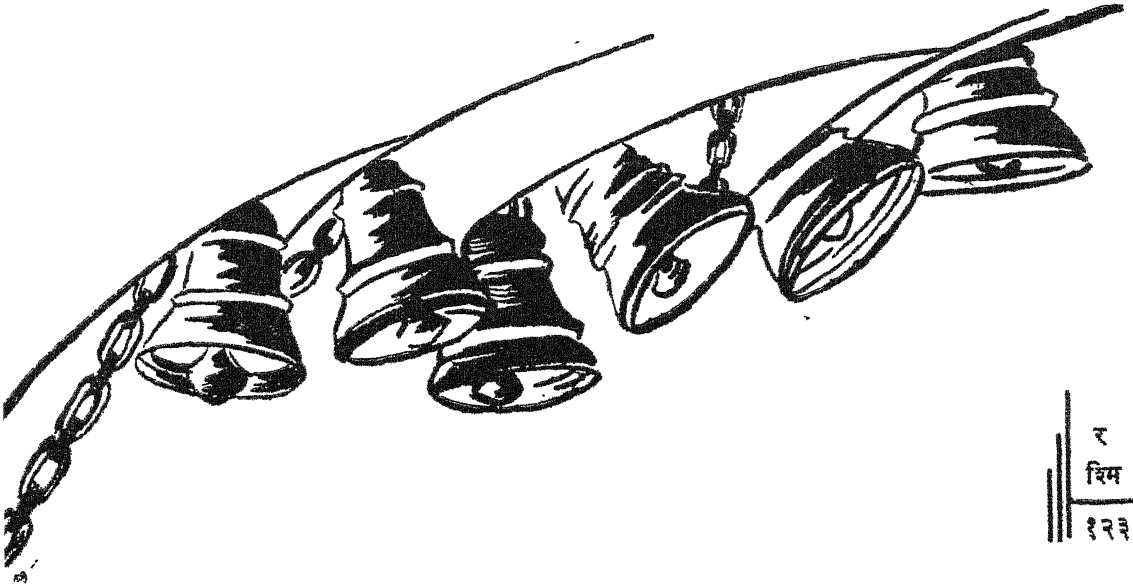
बीते वसन्त की चिर समाधि !

जग-शतदल से नव खेल, खेल
कुछ कह रहस्य की करुण बात,
उड़ गई अश्रु सा तुझे डाल
किसके जीवन से मिलन-रात ?

रहता जिसका अम्लान रङ्ग--
तू मोती है या अश्रु-हार !

किस हृदय-कुंज में मन्द मन्द
तू बहती थी बन नेह-धार ?
कर गई शीत की निठुर रात
छू कब तेरा जीवन तुषार ?

पाती न जगा क्यों मधु-बतास
हे हिम के चिर निस्पन्द भार ?

जिस अमर काल का पथ अनन्त
धोते रहते आँसू नवीन,
क्या गया वहीं पद-चिह्न छोड़
छिपकर कोई दुख-पथिक दीन ?

जिसकी तुझमें है अमिट रेख
अस्थिर जीवन के करुण काव्य !

कब किसका सुख-सागर अथाह
हो गया विरह से व्यथित प्राण ?
तू उड़ी जहाँ से बन उसाँस
फिर हुई मेघ सी मूर्तिमान !

कर गया तुझे पाषाण कौन
दे चिर जीवन का निठुर शाप ?

किसने जाता मधुदिवस जान
ली छीन छाँह उसकी अधीर ?
रच दी उसको यह धवल सौध
ले साधों की रज नयन-नीर ;

जिसका न अन्त जिसमें न प्राण
हे सुधि के बन्दीगृह अजान !

वे दृग जिनके नव नेहदीप
बुझकर न हुए निष्प्रभ मलीन,
वह उर जिसका अनुराग-कंज
मुंदकर न हुआ मधुहीन दीन,

वह सुषमा का चिर नीड़ गात
कैसे तू रख पाती सँभाल !

प्रिय के मानस में हो विलीन
फिर धड़क उठे जो मूक प्राण,
जिसने स्मृतियों में हो सजीव
देखा नवजीवन का विहान,

वह जिसको पतझर था वसन्त
क्या तेरा पाहुन है समाधि ?

दिन बरसा अपनी स्वर्णरेणु
मैली करता जिसकी न सेज,
चौंका पाती जिसके न स्वप्न
निशि मोती के उपहार भेज,

क्या उसकी है निद्रा अनन्त
जिसकी प्रहरी तू मूकप्राण?

सजनि तेरे दृग बाल !
चकित से विस्मित से दृग बाल—

आज खोये से आते लौट,
कहाँ अपनी चंचलता हार ?
झुकी जातीं पलकें सुकुमार,
कौन से नव रहस्य के भार ?

सरल तेरा मृदु हास !
अकारण वह शैशव का हास—

बन गया कब कैसे चुपचाप,
लाजभीनी सी मृदु मुस्कान !
तड़ित् सी जो अधरों की ओट,
झाँक हो जाती अन्तर्धान !

सजनि वे पद सुकुमार !
तरङ्गों से द्रुत पद सुकुमार—
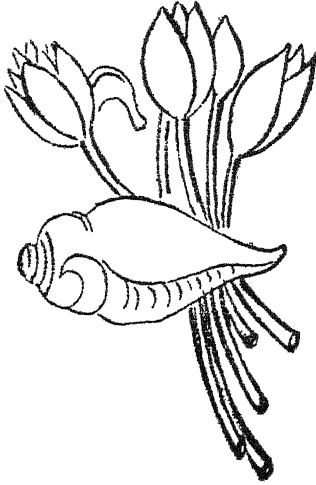
सीखते क्यों चंचल गति भूल,
भरे मेघों की धीमी चाल ?
तृषित कन कन को क्यों अलि चूम,
अरुण आभा सी देते ढाल ?

मुकुर से तेरे प्राण,
विश्व की निधि से तेरे प्राण—

छिपाये से फिरते क्यों आज,
किसी मधुमय पीड़ा का न्यास ?
सजल चितवन में क्यों है हास,
अधर में क्यों सस्मित निश्वास ?

अश्रु-सिक्त रज से किसने
निर्मित कर मोती सी प्याली,
इन्द्रधनुष के रङ्गों से
चित्रित कर मुझको दे डाली !

मैंने मधुर वेदनाओं की
उसमें जो मदिरा ढाली,
फूटी सी पड़ती है उसकी
फेनिल, विद्रुम सी लाली !

सुख-दुख की बुद्‌बुद्‌ सी लड़ियाँ
बन बन उसमें मिट जातीं,
बूँद बूँद होकर भरती वह
भर कर छलक छलक जाती !

इस आशा से मैं उसमें
बैठी हूँ निष्फल सपने घोल,
कभी तुम्हारे सस्मित अधरों--
को छू वे होंगे अनमोल !

तृतीय याम

नीरजा

रचना काल
१९३१-१९३४

प्रिय इन नयनों का अश्रु-नीर !

दुख से आविल सुख से पंकिल,
बुद्‌बुद् से स्वप्नों से फेनिल,
बहता है युग युग से अधीर !

जीवन-पथ का दुर्गमतम तल,
अपनी गति से कर सजल सरल,
शीतल करता युग तृषित तीर !

इसमें उपजा यह नीरज सित,
कोमल कोमल लज्जित मीलित,
सौरभ सी लेकर मधुर पीर !

इसमें न पंक का चिह्न शेष,
इसमें न ठहरता सलिल-लेश,
इसको न जगाती मधुप-भीर !

तेरे करुणा-कण से विलसित,
हो तेरी चितवन से विकसित,
छू तेरी श्वासों का समीर !

धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त-रजनी !

तारकमय नव वेणीबन्धन,
शीश-फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित घन-अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी !
पुलकती आ वसन्त-रजनी !

मर्मर की सुमधुर नूपुर-ध्वनि,
अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणि,
भर पद-गति में अलस तरंगिणि,
तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्मित से सजनी !
विहँसती आ वसन्त-रजनी !

पुलकित स्वप्नों की रोमावलि,
कर में हो स्मृतियों की अंजलि,
मलयानिल का चल दुकूल अलि !
घिर छाया सी श्याम, विश्व को
आ अभिसार बनी !
सकुचती आ वसन्त-रजनी !

सिहर सिहर उठता सरिता-उर,
खुल खुल पड़ते सुमन सुधा-भर,
मचल मचल आते पल फिर फिर,
सुन प्रिय की पद-चाप हो गई
पुलकित यह अवनी !
सिहरती आ वसन्त-रजनी !

पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर भर ?

सकुच सलज खिलती शेफाली,
अलस मौलश्री डाली डाली;
बुनते नव प्रवाल कुंजों में,
रजत श्याम तारों से जाली;
शिथिल मधु-पवन, गिन-गिन मधु-कण,
हरसिंगार झरते हैं झर झर !
आज नयन आते क्यों भर भर ?

पिक की मधुमय वंशी बोली,
नाच उठी सुन अलिनी भोली;
अरुण सजल पाटल बरसाता;
तम पर मृदु पराग की रोली;
मृदुल अंक धर, दर्पण सा सर,
आँज रही निशि दृग-इन्दीवर !
आज नयन आते क्यों भर भर ?

आँसू बन बन तारक आते,
सुमन हृदय में सेज बिछाते;
कम्पित वानीरों के बन भी,
रह रह करुण विहाग सुनाते;
निद्रा उन्मन, कर कर विचरण,
लौट रही सपने संचित कर !
आज नयन आते क्यों भर भर ?

जीवन, जल-कण से निर्मित सा,
चाह-इन्द्रधनु से चित्रित सा;
सजल मेघ सा धूमिल है जग;
चिर नूतन सकरुण पुलकित सा;
तुम विद्युत् बन, आओ पाहुन !
मेरी पलकों में पग धर धर !
आज नयन आते क्यों भर भर ?

तुम्हें बाँध पाती सपने में !
तो चिरजीवन-प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में !

पावस-घन सी उमड़ बिखरती,
शरद-निशा सी नीरव घिरती,
धो लेती जग का विषाद
ढुलते लघु आँसू-कण अपने में !

मधुर राग बन विश्व सुलाती,
सौरभ बन कण कण बस जाती,
भरती मैं संसृति का क्रन्दन
हँस जर्जर जीवन अपने में !

सब की सीमा बन सागर सी,
हो असीम आलोक-लहर सी,
तारोंमय आकाश छिपा
रखती चंचल तारक अपने में !

शाप मुझे बन जाता बर सा,
पतझर मधु का मास अजर सा,
रचती कितने स्वर्ग एक
लघु प्राणों के स्पन्दन अपने में !

साँसें कहतीं अमर कहानी,
पल पल बनता अमिट निशानी,
प्रिय ! मैं लेती बाँध मुक्ति
सौ सौ लघुतम बन्धन अपने में !
तुम्हें बाँध पाती सपने में !

आज क्यों तेरी वीणा मौन ?

शिथिल शिथिल तन थकित हुए कर,
स्पन्दन भी भूला जाता उर,

मधुर कसक सा आज हृदय में
आन समाया कौन ?
आज क्यों तेरी वीणा मौन ?

झुकती आतीं पलकें निश्चल,
चित्रित निद्रित से तारक चल,

सोता पारावार दृगों में
भर भर लाया कौन ?
आज क्यों तेरी वीणा मौन ?

बाहर घन-तम, भीतर दुख-तम,
नभ में विद्युत् तुझ में प्रियतम,

जीवन पावस-रात बनाने
सुधि बन छाया कौन ?
आज क्यों तेरी वीणा मौन ?

शृंगार कर ले री सजनि !
नव क्षीरनिधि की ऊर्म्मियों से
रजत झीने मेघ सित;
मृदु फेनमय मुक्तावली से
तैरते तारक अमित;
सखि ! सिहर उठती रश्मियों का
पहिन अवगुण्ठन अवनि !

हिम-स्नात कलियों पर जलाये
जुगनुओं ने दीप से;
ले मधु-पराग समीर ने
वनपथ दिये हैं लीप से;
गाती कमल के कक्ष में
मधु-गीत मतवाली अलिनि !

तू स्वप्न-सुमनों से सजा तन
विरह का उपहार ले;
अगणित युगों की प्यास का
अब नयन अंजन सार ले !
अलि ! मिलन-गीत बने मनोरम
नूपुरों की मदिर ध्वनि !

इन पुलिन के अणु आज हैं
भूली हुई पहचान से;
आते चले जाते निमिष
मनुहार से, वरदान से;
अज्ञात पथ, है दूर प्रिय चल
भीगती मधु की रजनि !

कौन तुम मेरे हृदय में ?

कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में
घुमड़ घिर झरता अपरिचित ?

स्वर्णस्वप्नों का चितेरा
नींद के सूने निलय में !
कौन तुम मेरे हृदय में ?

अनुसरण निश्वास मेरे
कर रहे किसका निरन्तर ?
चूमने पदचिह्न किसके
लौटते यह श्वास फिर फिर ?

कौन बन्दी कर मुझे अब
बँध गया अपनी विजय में ?
कौन तुम मेरे हृदय में ?

एक करुण अभाव में चिर—
तृप्ति का संसार संचित;
एक लघु क्षण दे रहा
निर्वाण के वरदान शत शत;

पा लिया मैंने किसे इस
वेदना के मधुर क्रय में ?
कौन तुम मेरे हृदय में ?

गूँजता उर म न जाने
दूर के संगीत सा क्या !
आज खो निज को मुझे
खोया मिला, विपरीत सा क्या !
क्या नहा आई विरह-निशि
मिलन-मधु-दिन के उदय में ?
कौन तुम मेरे हृदय में ?

तिमिर-पारावार में
आलोक-प्रतिमा है अकम्पित;
आज ज्वाला से बरसता
क्यों मधुर घनसार सुरभित ?
सुन रही हूँ एक ही
झंकार जीवन में प्रलय में ?
कौन तुम मेरे हृदय में ?

मूक सुख दुख कर रहे
मेरा नया श्रृंगार सा क्या ?
झूम गर्वित स्वर्ग देता—
नत धरा को प्यार सा क्या ?
आज पुलकित सृष्टि क्या
करने चली अभिसार लय में ?
कौन तुम मेरे हृदय में ?
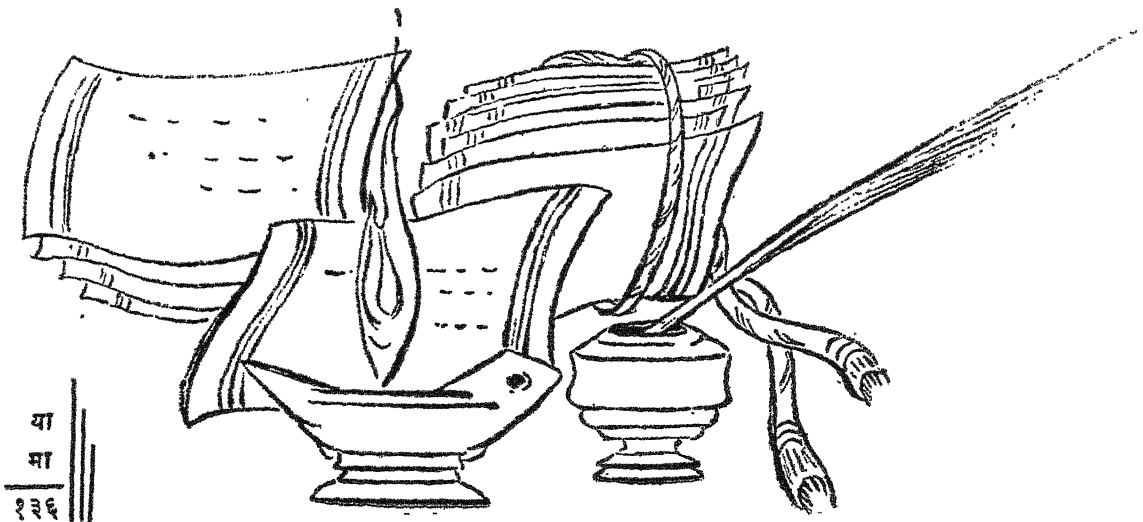
ओ पागल संसार !

मांग न तू हे शीतल तममय !

जलने का उपहार !

करता दीपशिखा का चुम्बन,
पल में ज्वाला का उन्मीलन;
छूते ही करना होगा
जल मिटने का व्यापार !
ओ पागल संसार !
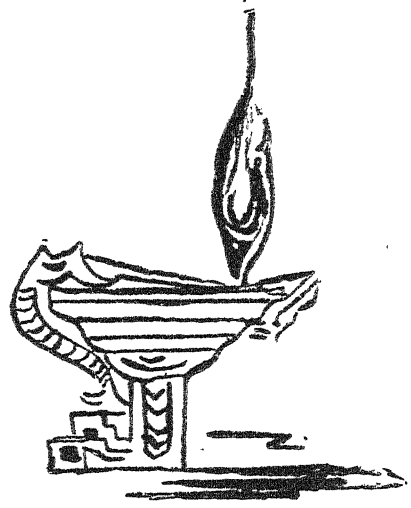
दीपक जल देता प्रकाश भर,
दीपक को छू जल जाता घर;
जलने दे एकाकी मत आ
हो जावेगा क्षार !
ओ पागल संसार !

जलना ही प्रकाश उसमें सुख,
बुझना ही तम है तम में दुख;
तुझमें चिर दुख, मुझमें चिर सुख
कैसे होगा प्यार !
ओ पागल संसार !

शलभ अन्य की ज्वाला से मिल,
झुलस कहाँ हो पाया उज्ज्वल !
कब कर पाया वह लघु तन से
नव आलोक-प्रसार !
ओ पागल संसार !

अपना जीवन-दीप मृदुलतर,
वर्ती कर निज स्नेह-सिक्त उर;
फिर जो जल पावे हँस हँस कर
हो आभा साकार !
ओ पागल संसार !

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात !

वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास;
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात !
जीवन विरह का जलजात !

आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल;
तरल जल-कण से बने घन सा क्षणिक् मृदु गात !
जीवन विरह का जलजात !

अश्रु से मधुकण लुटाता आ यहाँ मधुमास;
अश्रु ही की हाट बन आती करुण बरसात !
जीवन विरह का जलजात !

काल इसको दे गया पल-आँसुओं का हार;
पूछता इसकी कथा निश्वास ही में वात !
जीवन विरह का जलजात !

जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज,
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात !
जीवन विरह का जलजात !

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ !

नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में;
प्रलय में मेरा पता पदचिह्न जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में;

कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ !

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ;
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक हो कर दूर तन से छाँह वह चल हूँ;

दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ !

आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिमजल के,
शून्य हूँ जिसको बिछे हैं पाँवड़े पल के;
पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर में,
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में;

नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ !

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी;
तार भी आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी;

अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ !

रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

श्यामल श्यामल कोमल कोमल,

लहराता सुरभित केश-पाश !

नभगङ्गा की रजतधार में,

धो आई क्या इन्हें रात ?

कम्पित हैं तेरे सजल अङ्ग,

सिहरा सा तन है सद्यस्नात !

भीगी अलकों के छोरों से

चूतीं बूंदें कर विविध लास !

रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

सौरभभीना झीना गीला

लिपटा मृदु अंजन सा दुकूल;

चल अंचल से झर झर झरते

पथ में जुगनू के स्वर्ण-फूल;

दीपक से देता बार बार

तेरा उज्ज्वल चितवन-विलास !

रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है
वक-पाँतों का अरविन्द-हार;

तेरी निश्वासें छू भू को
बन बन जाती मलयज बयार;

केकी-रव की नूपुर-ध्वनि सुन
जगती जगती की मूक प्यास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

न स्निग्ध लटों से छा दे तन
पुलकित अंकों में भर विशाल;

झुक सस्मित शीतल चुम्बन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल;

दुलरा दे ना बहला दे ना
यह तेरा शिशु जग है उदास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !
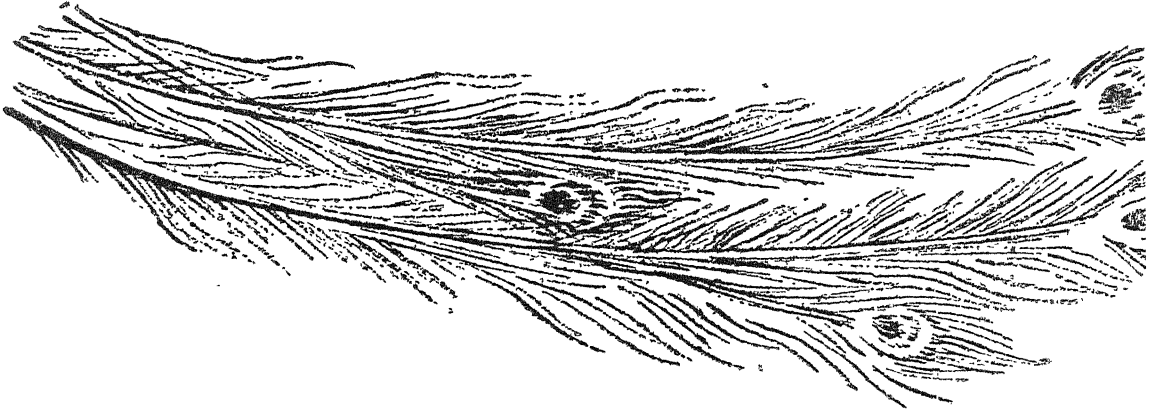
तुम मुझ में प्रिय ! फिर परिचय क्या !

तारक में छबि प्राणों में स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संसृति,

भर लाई हूँ तेरी चंचल

और करूँ जग में संचय क्या !

तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाईं रजनी विषादमय,
यह जागृति वह नींद स्वप्नमय,

खेल खेल थक थक सोने दो

मैं समझूँगी सृष्टि प्रलय क्या !

तेरा अधर-विचुम्बित प्याला,
तेरी ही स्मित-मिश्रित हाला,
तेरा ही मानस मधुशाला,

फिर पूछूं क्या मेरे साकी !
देते हो मधुमय विषमय क्या ?

रोम रोम में नन्दन पुलकित,
साँस साँस में जीवन शत शत,
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित,

मुझ में नित बनते मिटते प्रिय !
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या ?

हारूँ तो खोऊँ अपनापन,
पाऊँ प्रियतम में निर्वासन,
जीत बनूँ तेरा ही बन्धन,

भर लाऊँ सीपी में सागर
प्रिय ! मेरी अब हार विजय क्या ?

चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर-सङ्गम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,

काया छाया में रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या !

बताता जा रे अभिमानी !

कण कण उर्वर करते लोचन,
स्पन्दन भर देता सूनापन,
जग का धन मेरा दुख निर्धन,
तेरे वैभव की भिक्षुक या
कहलाऊँ रानी !
बताता जा रे अभिमानी !

दीपक सा जलता अन्तस्तल,
संचित कर आँसू के बादल,
लिपटा है इससे प्रलयानिल,
क्या यह दीप जलेगा तुझसे
भर हिम का पानी ?
बताता जा रे अभिमानी !

चाहा था तुझ में मिटना भर,
दे डाला बनना मिट मिट कर,
यह अभिशाप दिया है या वर,
पहली मिलन-कथा हूँ या मैं
चिर-विरह कहानी !
बताता जा रे अभिमानी !

दीपक

मधुर मधुर मेरे दीपक जल !
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल !
पुलक पुलक मेरे दीपक जल !

सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझसे ज्वाला-कण;
विश्व-शलभ सिर धुन कहता 'मैं
हाय न जल पाया तुझ में मिल' !
सिहर सिहर मेरे दीपक जल !

जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक;
जलमय सागर का उर जलता,
विद्युत् ले घिरता है बादल !
विहँस विहँस मेरे दीपक जल !

द्रुम के अङ्ग हरित कोमलतम,
ज्वाला को करते हृदयङ्गम;
वसुधा के जड़ अन्तर में भी,
बन्दी है तापों की हलचल !
बिखर बिखर मेरे दीपक जल !

मेरी निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर;
मैं अंचल की ओट किये हूँ,
अपनी मृदु पलकों से चंचल !
सहज सहज मेरे दीपक जल !

सीमा ही लघुता का बन्धन,
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन;
मैं दृग के अक्षय कोषों से—
तुझ में भरती हूँ आँसू-जल !
सजल सजल मेरे दीपक जल !

तम असीम तेरा प्रकाश चिर,
खेलेंगे नव खेल निरन्तर;
तम के अणु अणु में विद्युत् सा—
अमिट चित्र अंकित करता चल !
सरल सरल मेरे दीपक जल !

तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय;
मधुर मिलन में मिट जाना तू—
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल !

मदिर मदिर मेरे दीपक जल !
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

मुखर पिक हौले बोल !
हठीले हौले हौले बोल !

जाग लुटा देंगी मधु कलियाँ मधुप कहेंगे 'और';
चौंक गिरेंगे पीले पल्लव अम्ब चलेंगे मौर;
समीरण मत्त उठेगा डोल !
हठीले हौले हौले बोल !

मर्मर की वंशी में गूँजेगा मधुऋतु का प्यार;
झर जावेगा कम्पित तृण से लघु सपना सुकुमार;
एक लघु आँसू बन बेमोल !
हठीले हौले हौले बोल !

'आता कौन' नीड़ तज पूछेगा विहगों का रोर;
दिग्वधुओं के घन-घूंघट के चंचल होंगे छोर;
पुलक से होंगे सजल कपोल !
हठीले हौले हौले बोल !

प्रिय मेरा निशीथ-नीरवता में आता चुपचाप,
मेरे निमिषों से भी नीरव है उसकी पदचाप;
सुभग ! यह पल घड़ियाँ अनमोल !
हठीले हौले हौले बोल !

वह सपना बन बन आता जागृति में जाता लौट;
मेरे श्रवण आज बैठे हैं इन पलकों की ओट;
व्यर्थ मत कानों में मधु घोल !
हठीले हौले हौले बोल !

भर पावे तो स्वरलहरी में भर वह करुण हिलोर;
मेरा उर तज वह छिपने का ठौर न ढूंढ़े भोर;
उसे बाँधूं फिर पलकें खोल !
हठीले हौले हौले बोल !
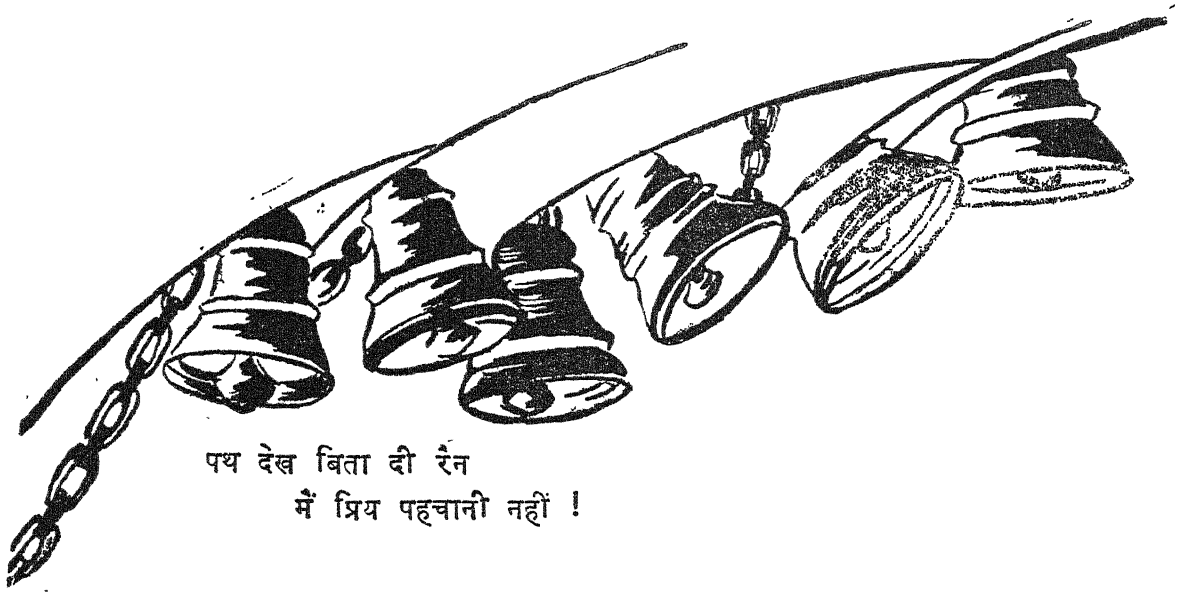
पथ देख बिता दी रैन
मैं प्रिय पहचानी नहीं !

तम ने धोया नभ-पंथ
सुवासित हिमजल से;
सूने आँगन में दीप
जला दिए झिलमिल से;
आ प्रात बुझा गया कौन
अपरिचित, जानी नहीं !
मैं प्रिय पहचानी नहीं !

धर कनक-थाल में मेघ
सुनहला पाटल सा,
कर बालारुण का कलश
विहग-रव मंगल सा,
आया प्रिय-पथ से प्रात—
सुनाई कहानी नहीं !
मैं प्रिय पहचानी नहीं !

नव इन्द्रधनुष सा चीर
महावर अंजन ले,
अलि-गुंजित मीलित पंकज--
--नूपुर रुनझुन ले,
फिर आई मनाने साँझ
मैं बेसुध मानी नहीं !
मैं प्रिय पहचानी नहीं !

इन श्वासों को इतिहास
आँकते युग बीते;
रोमों में भर भर पुलक
लौटते पल रीते;
यह ढुलक रही है याद
नयन से पानी नहीं !
मैं प्रिय पहचानी नहीं !

अलि कुहरा सा नभ, विश्व
मिटे बुद्बुद्-जल सा;
यह दुख का राज्य अनन्त
रहेगा निश्चल सा;
हूँ प्रिय की अमर सुहागिनि
पथ की निशानी नहीं !
मैं प्रिय पहचानी नहीं !

मेरे हँसते अधर नहीं जग--
की आँसू--लड़ियाँ देखो !
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुर्झाईं कलियाँ देखो !

हँस देता नव इन्द्रधनुष की--
स्मित में घन मिटता मिटता;
रँग जाता है विश्व राग से
निष्फल दिन ढलता ढलता;
कर जाता संसार सुरभिमय
एक सुमन झरता झरता;
भर जाता आलोक तिमिर में
लघु दीपक बुझता बुझता;

मिटनेवालों की हे निष्ठुर !
बेसुध रँगरलियाँ देखो ;
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुर्झाईं कलियाँ देखो ;

गल जाता लघु बीज असंख्यक
नश्वर बीज बनाने को;
तजता पल्लव वृन्त पतन के
हेतु नये विकसाने को,
मिटता लघु पल प्रिय देखो
कितने युग कल्प मिटाने को;
भूल गया जग भूल विपुल
भूलोंमय सृष्टि रचाने को !

मेरे बन्धन आज नहीं प्रिय,
संसृति की कड़ियाँ देखो !
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुर्झाईं कलियाँ देखो !

श्वासें कहतीं 'आता प्रिय'
निश्वास बताते 'वह जाता,';
आँखों ने समझा अनजाना
उर कहता चिर यह नाता;
सुधि से सुन 'वह स्वप्न सजीला
क्षण क्षण नूतन बन आता',
दुख उलझन में राह न पाता
सुख दृग-जल में बह जाता;

मुझ में हो तो आज तुम्हीं 'मैं'
बन दुख की घड़ियाँ देखो !
मेरे गीले पलक छुओ मत
बिखरी पंखुरियाँ देखो;
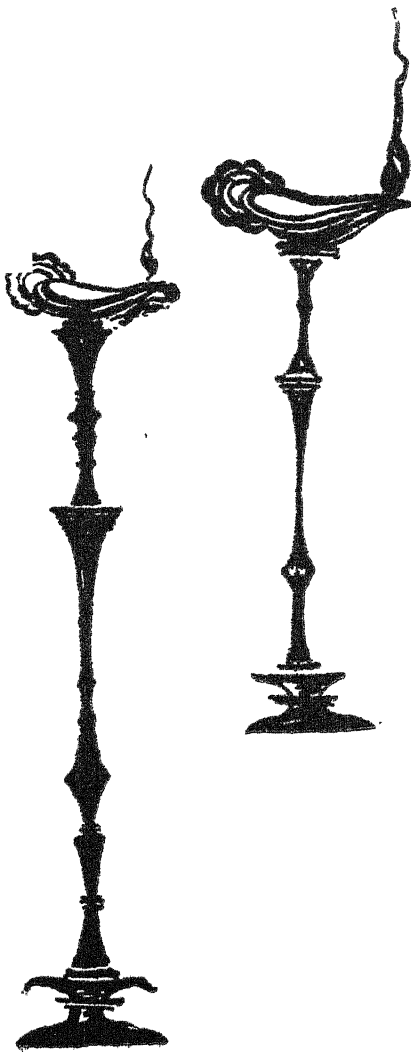
इस जादूगरनी वीणा पर
गा लेने दो क्षण भर गायक !

पल भर ही गाया चातक ने
रोम रोम में प्यास प्यास भर ;
काँप उठा आकुल सा अग जग
सिहर गया तारोंमय अम्बर;

भर आया घन का उर गायक !
गा लेने दो क्षण भर गायक !

क्षण भर ही गाया फूलों ने
दृग में जल अधरों में स्मित धर,
लघु उर के अनन्त सौरभ से
कर डाला यह पथ नन्दन चिर;

पाया चिर जीवन झर गायक !
गा लेने दो क्षण भर गायक !

एक निमिष गाया दीपक ने
ज्वाला का हँस आलिङ्गन कर;
उस लघु पल से गर्वित है तू
लघु रज-कण आभा का सागर,

दिव उस पर न्यौछावर गायक !
गा लेने दो क्षण भर गायक !

एक घड़ी गा लूँ प्रिय मैं भी
मधुर वेदना से भर अन्तर;
दुख हो सुखमय सुख हो दुखमय,
उपल बनें पुलकित से निर्झर;

मरु हो जावे उर्वर गायक !
गा लेने दो क्षण भर गायक !

घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय !

जलधि-मानस से नव जन्म पा
सुभग तेरे ही दृग-व्योम में,

सजल श्यामल मंथर मूक सा
तरल अश्रु-विनिर्मित गात ले,

नित घिरूँ झर झर मिटूँ प्रिय !
घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय !

आ मेरी चिर मिलन-यामिनी !

तममयि ! घिर आ धीरे धीरे,
आज न सज अलकों में हीरे,
चौंका दें जग श्वास न सीरे,

हौले झरें शिथिल कवरी में—
गूँथे हरश्रृंगार कामिनी !

हौले डाल पराग-बिछौने,
आज न दे कलियों को रोने,
दे चिर चंचल लहरें सोने,

जगा न निद्रित विश्व ढालने
विधु-प्याले से मधुर चाँदनी !

परिमल भर लावे नीरव घन,
गले न मृदु उर आँसू बन बन,
हो न करुण पी पी का क्रन्दन,

अलि, जुगनू के छिन्न हार को
पहिन न विहँसे चपल दामिनी !

अपलक हैं अलसाये लोचन,
मुक्ति बन गये मेरे बन्धन,
है अनन्त अब मेरा लघु क्षण,

रजनि ! न मेरी उर-कम्पन से
आज बजेगी विरह-रागिनी !

तम में हो चल छाया का क्षय,
सीमित की असीम में चिर लय,
एक हार में हों शत शत जय,

सजनि ! विश्व का कण कण मुझको
आज कहेगा चिर सुहागिनी !

जग ओ मुरली की मतवाली !

दुर्गम पथ हो ब्रज की गलियाँ,
शूलों में मधुवन की कलियाँ;
यमुना हो दृग के जलकण में,
वंशी-ध्वनि उर की कम्पन में;

जो तू करुणा का मंगलघट ले
बन आवे गोरसवाली !
जग ओ मुरली की मतवाली !

चरणों पर नवनिधियाँ खेलीं,
पर तूने हँस पहनी सेली;
चिर जाग्रत थी तू दीवानी,
प्रिय की भिक्षुक दुख की रानी;

खारे दृग-जल से सींच सींच
प्रिय की सनेह-बेली पाली !
जग ओ मुरली की मतवाली !

कंचन के प्याले का फेनिल,
नीलम सा तम सा हालाहल;
छू तूने कर डाला उज्ज्वल,
प्रिय के पदपद्मों का मधुजल;

फिर अपने मृदु कर से छूकर
मधु कर जा यह विष की प्याली !
जग ओ मुरली की मतवाली !

मरुशेष हुआ यह मानस-सर,
गतिहीन मौन दृग के निर्झर;
इस शीत निशा का अन्त नहीं,
आता पतझार वसन्त नहीं;

गा तेरे ही पंचम स्वर से
कुसुमित हो यह डाली डाली !
जग ओ मुरली की मतवाली !
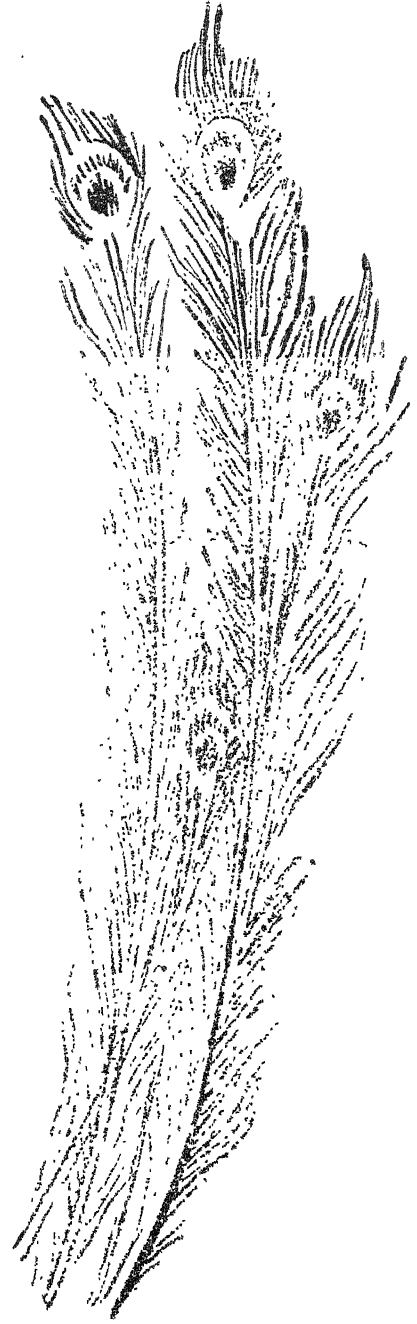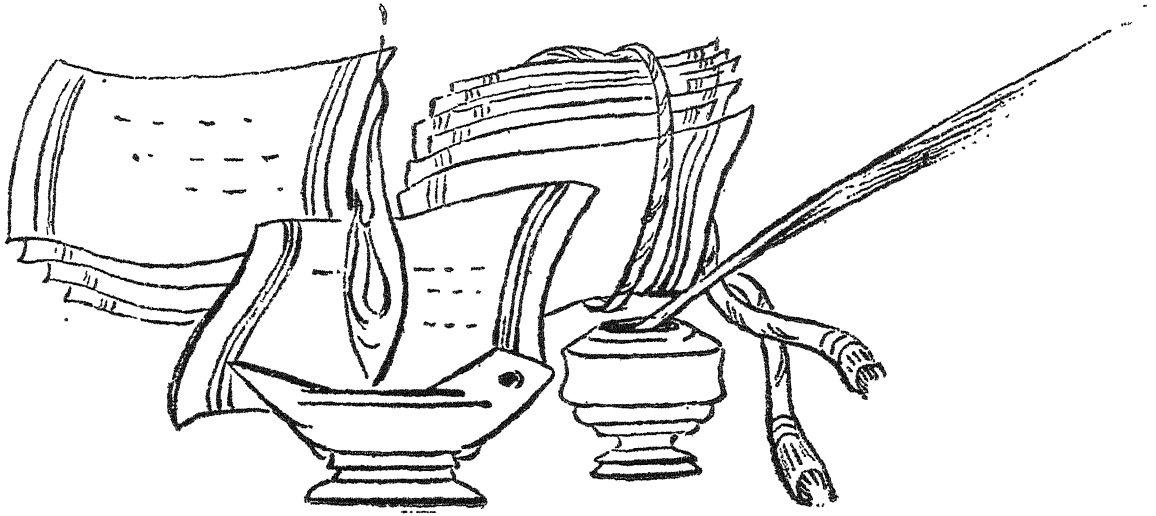
कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती !

दृग-जल की सित मसि है अक्षय,
मसिप्याली, झरते तारक-द्वय;

पल पल के उड़ते पृष्ठों पर,
सुधि से लिख श्वासों के अक्षर—

मैं अपने ही बेसुधपन में
लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती !

छायापथ में छाया से चल,
कितने आते जाते प्रतिपल;

लगते उनके विभ्रम इंगित,
क्षण में रहस्य क्षण में परिचित;

मिलता न दूत वह चिर परिचित
जिसको उर का धन दे आती !

अज्ञात पुलिन से, उज्ज्वलतर,
किरणें प्रवाल-तरणी में भर,

तम के नीलम-कूलों पर नित,
जो ले आती अरुणा सस्मित--

वह मेरी करुण कहानी में
मुस्कानें अंकित कर जाती !

सज केशर-पट तारक-बेंदी
दृग अंजन मृदु पद में मेंहदी,

आती भर मदिरा से गगरी,
सन्ध्या अनुराग सुहागभरी;

मेरे विषाद में वह अपने
मधुरस की बूँदें छलकाती !

डाले नव घन का अवगुण्ठन,
दृग-तारक में सकरुण चितवन,

पदध्वनि से सपने जाग्रत कर,
श्वासों से फैला मूक तिमिर,

निशि अभिसारों में आँसू से
मेरी मनुहारें धो जाती !

कैसे सँदेश प्रिय पहुंचाती !

मैं बनी मधुमास आली !

आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी;
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चाँदनी;

उमड़ आई री दृगों में
सजनि कालिन्दी निराली !

रजत-स्वप्नों में उदित अपलक विरल तारावली;
जाग सुख-पिक ने अचानक मदिर पंचम तान ली;

बह चली निश्वास की मृदु
वात मलय-निकुंज-पाली !

सजल रोमों में बिछे हैं पाँवड़े मधुस्नात से;
आज जीवन के निमिष भी दूत हैं अज्ञात से;

क्या न अब प्रिय की बजेगी
मुरलिका मधु-रागवाली ?

मैं बनी मधुमास आली !

मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है !

मेरी आँखों में ढलकर
छवि उसकी मोती बन आई;
उसके घन-प्यालों में है
विद्युत् सी मेरी परछाईं;
नभ में उसके दीप, स्नेह
जलता है पर मेरा उनमें;
मेरे हैं यह प्राण, कहानी
पर उसकी हर कम्पन में;

यहाँ स्वप्न की हाट वहाँ अलि छाया का मेला सा है !

उसकी स्मित लुटती रहती
कलियों में मेरे मधुवन की;
उसकी मधुशाला में बिकती
मादकता मेरे मन की;
मेरा दुख का राज्य मधुर
उसकी सुधि के पल रखवाले;
उसका सुख का कोष वेदना--
के मैंने ताले डाले;

वह सौरभ का सिन्धु मधुर जीवन मधु की वेला सा है !

मुझे न जाना अलि ! उसने
जाना इन आँखों का पानी;
मैंने देखा उसे नहीं .
पदध्वनि है केवल पहचानी;
मेरे मानस में उसकी स्मृति
भी तो विस्मृति बन आती;
उसके नीरव मन्दिर में
काया भी छाया हो जाती;
क्यों यह निर्मम खेल सजनि ! उसने मुझसे खेला सा है ?

तुमको क्या देखूँ चिर नूतन

जिसके काले तिल में बिम्बित,
हो जाते लघु तृण औ' अम्बर,
निश्चलता में स्वप्नों से जग,
चंचल हो भर देता सागर !

जिस बिन सब आकार-हीन तम,
देख न पाई मैं यह लोचन !

तुमको पहचानूँ क्या सुन्दर !

जो मेरे सुख दुख से उर्वर,
जिसको मैं अपना कह गर्वित,
करता सूनेपन को, पल में,
जड़ को नव कम्पन में कुसुमित,

जो मेरी श्वासों का उद्गम,
जान न पाई अपना ही उर !

तुमको क्या बाँधूँ छायातन !

तेरी विरह-निशा जिसका दिन,
जो स्वच्छन्द मुझे है बन्धन,
अणुमय हो बनता जो जगमय,
उड़ते रहना जिसका स्पन्दन,

जीवन जिससे मेरा सङ्गम,
बाँध न पाई अपना चल मन !

तुमको क्या रोकूँ चिर चंचल !

जिसका मिट जाना प्रलयंकर,
बनना ही संसृति का अंकुर,
मेरी पलकों का द्रुत कम्पन,
है जिसका उत्थान पतन चिर,

मुझसे जो नव और चिरन्तन,
रोक न पाई मैं वह लघु पल !
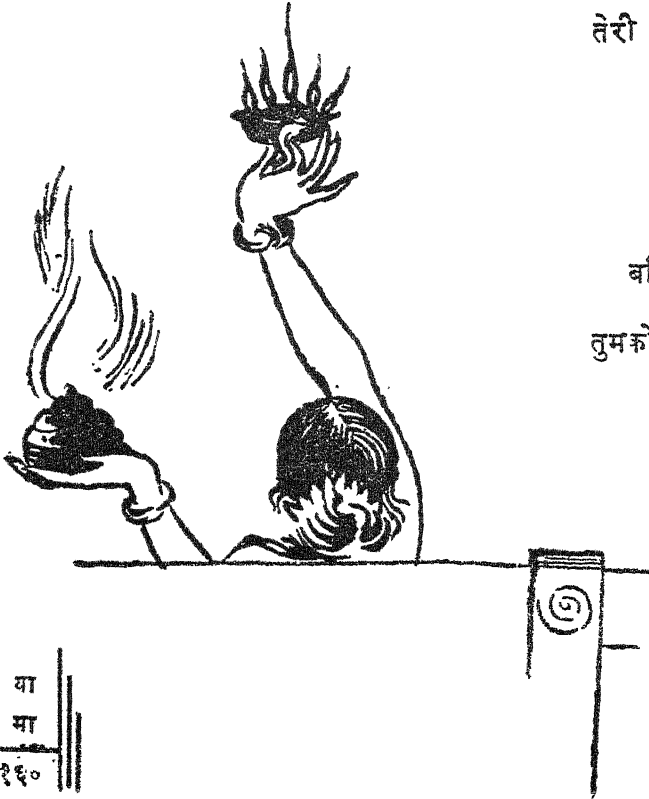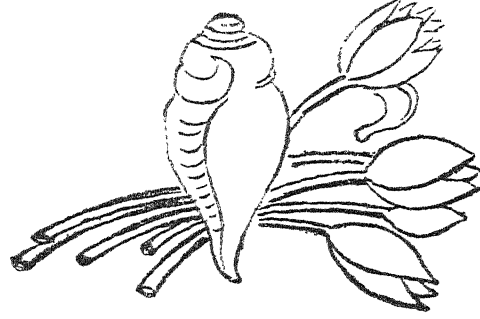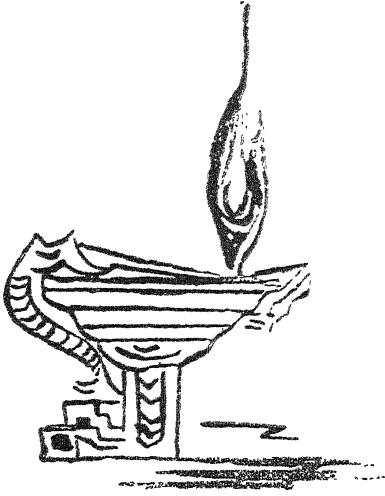
प्रिय गया है लौट रात !

सजल धवल अलस चरण,
मूक मदिर मधुर करुण,
चाँदनी है अश्रुस्नात !

सौरभ-मद ढाल शिथिल,
मृदु बिछा प्रवाल बकुल,
सो गई सी चपल वात !

युग युग जल मूक विकल,
पुलकित अब स्नेह-तरल,
दीपक है स्वप्नसात् !

किसके पदचिह्न विमल,
तारकों में अमिट विरल,
गिन रहे हैं नीर-जात !

किसकी पदचाप चकित,
जग उठे हैं जन्म अमित,
श्वास श्वास में प्रभात !

एक बार आओ इस पथ से
मलय-अनिल बन हे चिर चंचल !

अधरों पर स्मित सी किरणें ले
श्रमकण से चर्चित सकरुण मुख,
अलसाई है विरह-यामिनी
पथ में लेकर सपने सुख-दुख,
आज सुला दो चिर निद्रा में
सुरभित कर इसके चल कुन्तल !

मृदु नभ के उर में छाले से
निष्ठुर प्रहरी से पल पल के,
शलभ न जिन पर मँडराते प्रिय !
भस्म न बनते जो जल जल के,
आज बुझा जाओ अम्बर के
स्नेहहीन यह दीपक झिलमिल!

तम ही तुम हो और विश्व में
मेरा चिर परिचित सूनापन,
मेरी छाया हो मुझमें लय
छाया में संसृति का स्पन्दन,
मैं पाऊँ सौरभ सा जीवन
तेरी निश्वासों में घुल मिल !
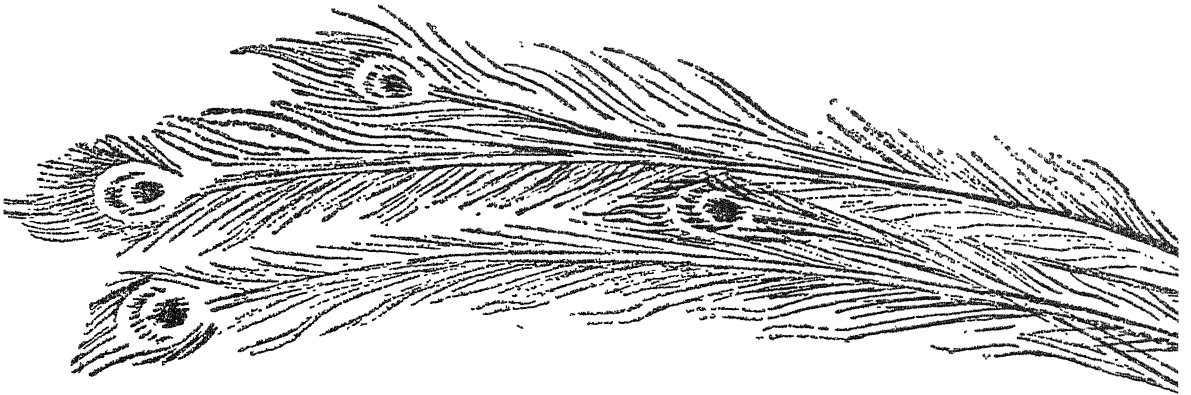
क्यों जग कहता मतवाली ?

क्यों न शलभ पर लुट लुट जाऊँ,
झुलसे पङ्खों को चुन लाऊँ,
उन पर दीपशिखा अँकवाऊँ,

अलि ! मैंने जलने ही में जब
जीवन की निधि पा ली !

क्या अनुनय में मनुहारों में,
क्या आँसू में उद्गारों में,
आवाहन में अभिसारों में,

जब मैंने अपने प्राणों में
प्रिय की छाँह छिपा ली !

भावे क्या अलि ! अस्थिर मधुदिन,
दो दिन का मृदु मधुकर-गुंजन,
पल भर का यह मधु-मद-वितरण,

चिर बसन्त है मेरे इन
पतझर की डाली डाली !

जो न हृदय अपना बिंधवाऊँ,
निश्वासों के तार बनाऊँ,
तो कह किसका हार बनाऊँ,

तारों ने वह दृष्टि, कली ने
उनकी हँसी चुरा ली !

मैंने कब देखी मधुशाला ?
कब माँगा मरकत का प्याला ?
कब छलकी विद्रुम सी हाला ?

मैंने तो उनकी स्मित में
केवल आँखें धो डाली !
क्यों जग कहता मतवाली ?
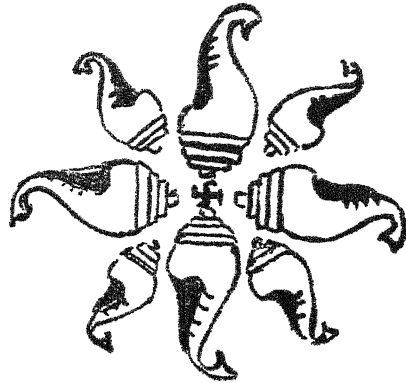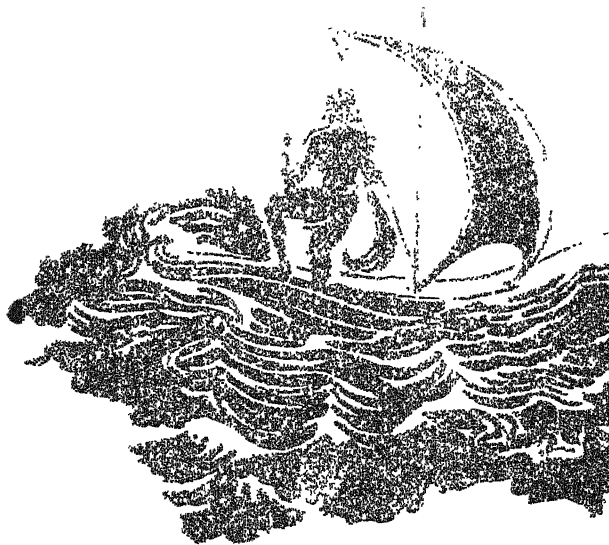
जाने किसकी स्मित रूम झूम,
जाती कलियों को चूम चूम !

उनके लघु उर में जग, अलसित,
सौरभ-शिशु चल देता विस्मित;
हौले मृदु पद से डोल डोल,
मृदु पंखुरियों के द्वार खोल !

कुम्हला जाती कलिका अजान,
वह सुरभित करता विश्व, घूम !

जाने किसकी छबि रूम झूम,
जाती मेघों को चूम चूम !

वे मन्थर जल के बिन्दु चकित,
नभ को तज ढुल पड़ते विचलित !
विद्युत् के दीपक ले चंचल,
सागर सा गर्जन कर निष्फल,

घन थकते उनको खोज खोज,
फिर मिट जाते ज्यों विफल धूम !

जाने किसकी ध्वनि रूम झूम,
जाती अचलों को चूम चूम!

उनके जड़ जीवन में संचित,
सपने बनते निर्झर पुलकित;
प्रस्तर के अणु घुल घुल अधीर,
उसमें भरते नव स्नेह-नीर!

बह बह चलना अज्ञात देश,
प्यासों में भरता प्राण, झूम!

जाने किसकी सुधि रूम झूम,
जाती पलकों को चूम चूम!

उर-कोषों के मोती अविदित,
बन पिघल पिघल कर तरल रजत,
भरते आँखों में बार बार,
रोके न आज रुकते अपार;

मिटते ही जाते हैं प्रतिपल,
इन धूलि-कणों के चरण चूम!

तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना !

कम्पित कम्पित,
पुलकित पुलकित,
परछाईं मेरी से चित्रित,
रहने दो रज का मंजु मुकुर,
इस बिन शृंगार-सदन सूना !
तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना !

सपने औ' स्मित,
जिसमें अंकित,
सुख दुख के डोरों से निर्मित;
अपनेपन की अवगुण्ठन बिन
मेरा अपलक आनन सूना !
तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना !

जिनका चुम्बन,
चौंकाता मन,
बेसुधपन में भरता जीवन,
भूलों के शूलों बिन नूतन,
उर का कुसुमित उपवन सूना !
तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना !

दृग-पुलिनों पर,
हिम से मृदुतर,
करुणा की लहरों में बह कर,
जो आ जाते मोती, उन बिन,
नवनिधियोंमय जीवन सूना !
तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना !

जिसका रोदन,
जिसकी किलकन,
मुखरित कर देते सूनापन,
इन मिलन-विरह-शिशुओं के बिन
विस्तृत जग का आँगन सूना !
तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना !
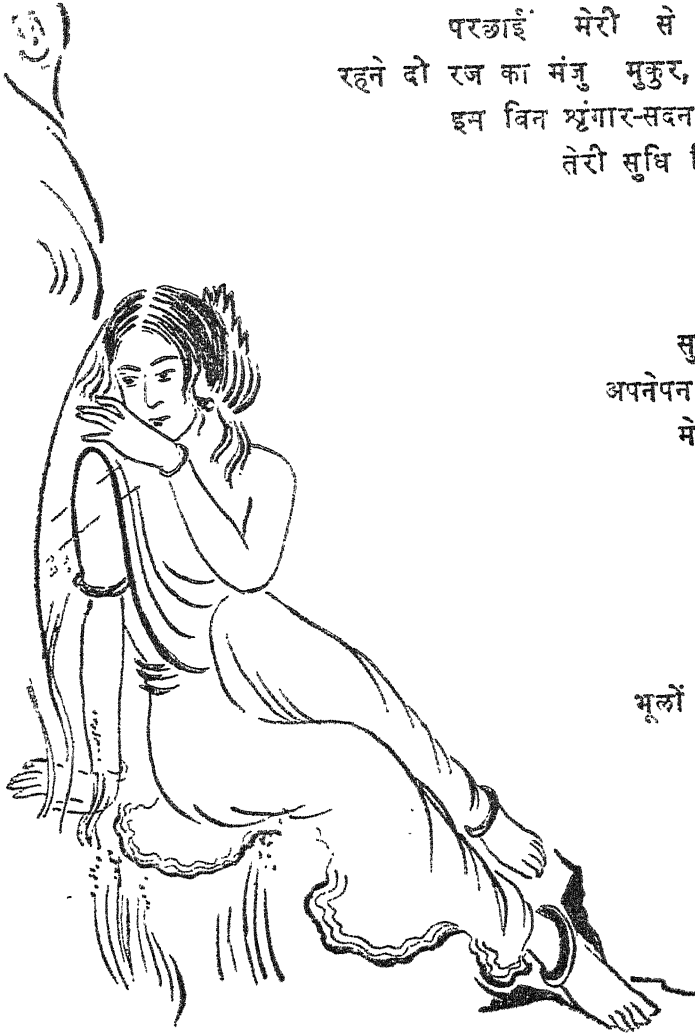
टूट गया वह दर्पण निर्मम !

उसमें हँस दी मेरी छाया,
मुझमें रो दी ममता माया,
अश्रु-हास ने विश्व सजाया,

रहे खेलते आँखमिचौनी
प्रिय ! जिसके परदे में 'मैं' 'तुम' !
टूट गया वह दर्पण निर्मम !

अपने दो आकार बनाने,
दोनों का अभिसार दिखाने,
भूलों का संसार बसाने,

जो झिलमिल झिलमिल सा तुमने
हँस हँस दे डाला था निरुपम !
टूट गया वह दर्पण निर्मम !

कैसा पतझर कैसा सावन,
कैसी मिलन विरह की उलझन,
कैसा पल घड़ियोंमय जीवन,

कैसे निशि-दिन कैसे सुख-दुख
आज विश्व में तुम हो या तम !
टूट गया वह दर्पण निर्मम !

किसमें देख सँवारूँ कुन्तल,
अङ्गराग पुलकों का मल मल,
स्वप्नों से आँजूँ पलकें चल,

किस पर रीझूँ किस से रूठूँ,
भर लूँ किस छबि से अन्तरतम !
टूट गया वह दर्पण निर्मम !

आज कहाँ मेरा अपनापन,
तेरे छिपने का अवगुण्ठन,
मेरा बन्धन तेरा साधन,

तुम मुझ में अपना सुख देखो
मैं तुम में अपना दुख प्रियतम !
टूट गया वह दर्पण निर्मम !
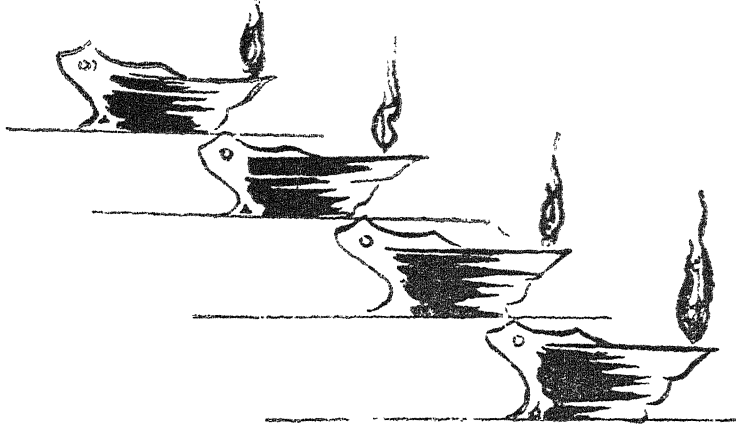
ओ विभावरी !

चाँदनी का अंगराग,
माँग में सजा पराग,
रश्मि-तार बाँध मृदुल
चिकुर-भार री !
ओ विभावरी !

अनिल घूम देश देश,
लाया प्रिय का सँदेश,
मोतियों के सुमन-कोष,
वार वार री !
ओ विभावरी !

लेकर मृदु ऊर्म्मिबीन,
कुछ मधुर करुण नवीन,
प्रिय की पदचाप-मदिर
गा मलार री !

ओ विभावरी !
बहने दे तिमिर भार,
बुझने दे यह अँगार,
पहिन सुरभि का दुकूल
बकुलहार री !
ओ विभावरी !

प्रिय ! जिसने दुख पाला हो !

जिन प्राणों से लिपटी हो
पीड़ा सुरभित चन्दन सी,
तूफानों की छाया हो
जिसको प्रिय-आलिङ्गन सी,

जिसको जीवन की हारें
हों जय के अभिनन्दन सी,
वर दो यह मेरा आँसू
उसके उर की माला हो !

जो उजियाला देता हो
जल जल अपनी ज्वाला में,
अपना सुख बाँट दिया हो
जिसने इस मधुशाला में,

हँस हालाहल ढाला हो
अपनी मधु की हाला में,
मेरी साधों से निर्मित
उन अधरों का प्याला हो !
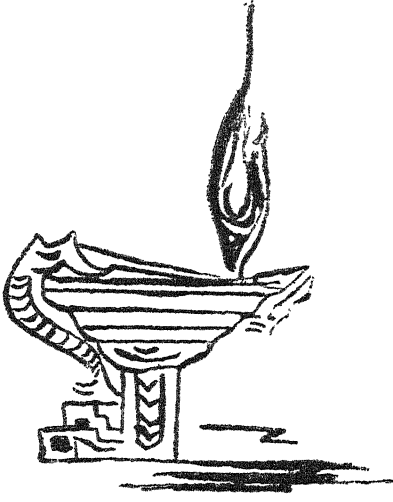
दीपक में पतङ्ग जलता क्यों ?
प्रिय की आभा में जीता फिर
दूरी का अभिनय करता क्यों ?
पागल रे पतङ्ग जलता क्यों ?

उजियाला जिसका दीपक में,
मुझमें भी है वह चिनगारी,
अपनी ज्वाला देख, अन्य की
ज्वाला पर इतनी ममता क्यों ?

गिरता कब दीपक, दीपक में,
तारक में तारक कब घुलता ?
तेरा ही उन्माद शिखा में
जलता है फिर आकुलता क्यों !

पाता जड़ जीवन, जीवन से,
तम दिन में मिल दिन हो जाता;
पर जीवन के, आभा के कण,
एक सदा, भ्रम में फिरता क्यों !

जो तू जलने को पागल हो,
आँसू का जल स्नेह बनेगा;
धूमहीन निस्पन्द जगत में
जल बुझ, यह क्रन्दन करता क्यों ?
दीपक में पतङ्ग जलता क्यों ?

आँसू का मोल न लूँगी मैं !

यह क्षण क्या ? द्रुत मेरा स्पन्दन;
यह रज क्या ? नव मेरा मृदु तन;
यह जग क्या ? लघु मेरा दर्पण;
प्रिय तुम क्या ? चिर मेरे जीवन;

मेरे सब सब में प्रिय तुम,
किससे व्यापार करूँगी मैं ?

आँसू का मोल न लूँगी मैं !

निर्जल हो जाने दो बादल,
मधु से रीते सुमनों के दल;
करुणा बिन जगती का अंचल,
मधुर व्यथा बिन जीवन के पल;

मेरे दृग में अक्षय जल,
रहने दो विश्व भरूँगी मैं !

आँसू का मोल न लूँगी मैं !

मिथ्या, प्रिय मेरा अवगुण्ठन,
पाप शाप, मेरा भोलापन !
चरम सत्य, यह सुधि का दंशन,
अन्तहीन, मेरा करुणा-कण;

युग युग के बन्धन को प्रिय !
पल में हँस 'मुक्ति' करूँगी मैं !

आँसू का मोल न लूँगी मैं !

कमलदल पर किरण-अंकित
चित्र हूँ मैं क्या चितेरे ?

बादलों की प्यालियाँ भर
चाँदनी के सार से,

तूलिका कर इन्द्रधनु
तुमने रँगा उर प्यार से;

काल के लघु अश्रु से
धुल जायँगे क्या रङ्ग मेरे ?
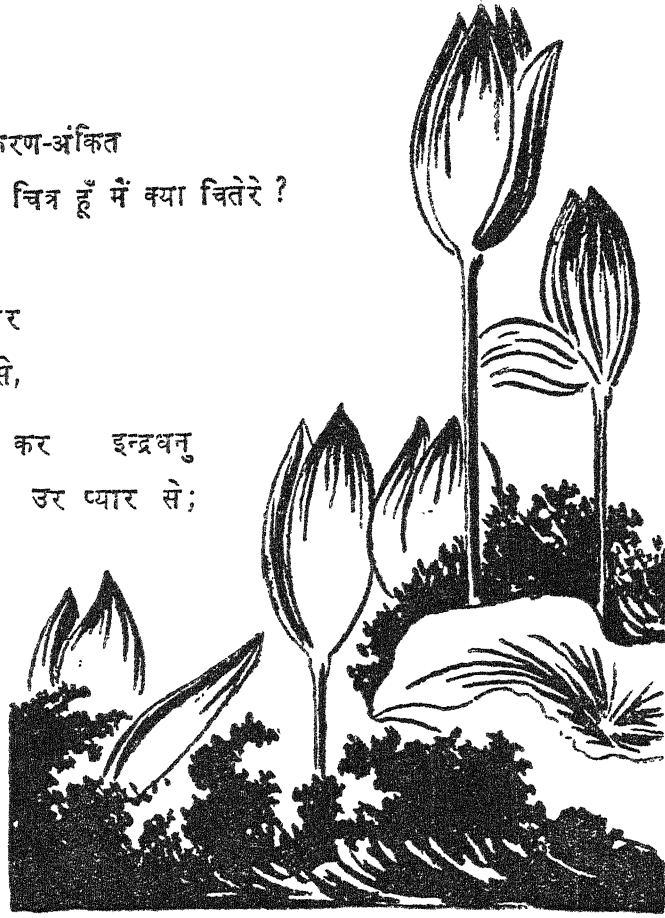
तड़ित् सुधि में, वेदना में
करुण पावस-रात भी;

आँक स्वप्नों में दिया
तुमने वसन्त-प्रभात भी;

क्या शिरीष-प्रसून से
कुम्हलायँगे यह साज मेरे ?

है युगों का मूक परिचय
देश से इस राह से;

हो गई सुरभित यहाँ की
रेणु मेरी चाह से;

नाश के निश्वास से
मिट पायँगे क्या चिह्न मेरे ?

नाच उठते निमिष पल
मेरे चरण की चाप से;

नाप ली निःसीमता
मैंने दृगों के माप से;

मृत्यु के उर में समा क्या
पायँगे अब प्राण मेरे ?

आँक दी जग के हृदय में
अमिट मेरी प्यास क्यों ?

अश्रुमय अवसाद क्यों यह
पुलक-कम्पन-लास क्यों ?

मैं मिटूँगी क्या अमर
हो जायँगे उपहार मेरे ?
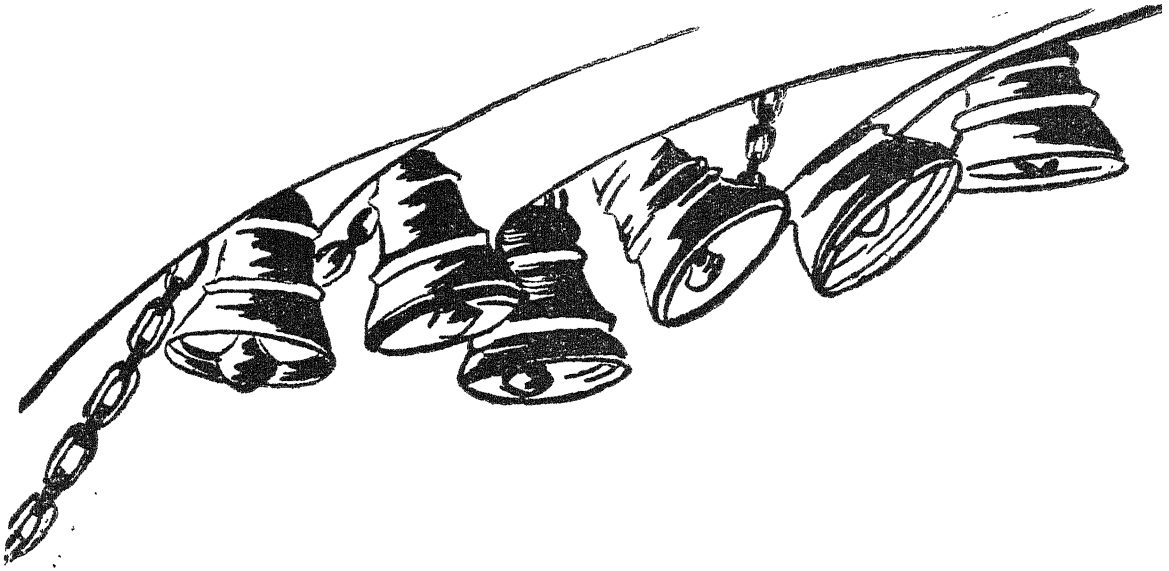
प्रिय ! मैं हूँ एक पहेली भी !

जितना मधु जितना मधुर हास
जितना मद तेरी चितवन में,
जितना क्रन्दन जितना विषाद
जितना विष जग के स्पन्दन में,

पी पी में चिर दुख-प्यास बनी
सुख-सरिता की रँगरेली भी !

मेरे प्रतिरोमों से अविरत,
झरते हैं निर्झर और आग;
करतीं विरक्ति आसक्ति प्यार,
मेरे श्वासों में जाग जाग;

प्रिय मैं सीमा की गोदपली
पर हूँ असीम से खेली भी !

क्या नई मेरी कहानी !

विश्व का कण कण सुनाता
प्रिय वही गाथा पुरानी !

सजल बादल का हृदय-कण,
चू पड़ा जब पिघल भू पर,
पी गया उसको अपरिचित
तृषित दरका पंक का उर;

मिट गई उससे तड़ित् सी
हाय वारिद की निशानी !

करुण वह मेरी कहानी !

जन्म से मृदु कञ्ज-उर में
नित्य पाकर प्यार लालन,
अनिल के चल पङ्ख पर फिर
उड़ गया जब गन्ध उन्मन,

बन गया तब सर अपरिचित
हो गई कलिका बिरानी !

निठुर वह मेरी कहानी !

चीर गिरि का कठिन मानस
बह गया जो स्नेह-निर्झर,
ले लिया उसको अतिथि कह
जलधि ने जब अंक में भर,

वह सुधा सा मधुर पल में
हो गया तब क्षार पानी !

अमिट वह मेरी कहानी !

मधुवेला है आज
अरे तू जीवन-पाटल फूल !

आई दुख की रात मोतियों की देने जयमाल;
सुख की मन्द बतास खोलती पलकें दे दे ताल;

डर मत रे सुकुमार !
तुझे दुलराने आये शूल !

अरे तू जीवन-पाटल फूल !

भिक्षुक सा यह विश्व खड़ा है पाने करुणा प्यार;
हँस उठ रे नादान खोल दे पंखुरियों के द्वार ;

रीते कर ले कोष
नहीं कल सोना होगा धूल !

अरे तू जीवन-पाटल, फूल !

यह पतझर मधुवन भी हो !

दुख सा तुषार सोता हो
बेसुध सा जब उपवन में,
उस पर छलका देती हो
वनश्री मधु भर चितवन में;
शूलों का दंशन भी हो
कलियों का चुम्बन भी हो !

सूखे पल्लव फिरते हों
कहने जब करुण कहानी,
मारुत परिमल का आसन
नभ दे नयनों का पानी,
जब अलिकुल का क्रन्दन हो
पिक का कल कूजन भी हो !

जब संध्या ने आँसू में
अंजन से हो मसि घोली,
तब प्राची के अञ्चल में
हो स्मित से चर्चित रोली;
काली अपलक रजनी में
दिन का उन्मीलन भी हो !

जब पलकें गढ़ लेती हों
स्वाती के जल बिन मोती,
अधरों पर स्मित की रेखा
हो आकर उनको धोती,
निर्मम निदाघ में मेरे
करुणा का नव घन भी हो !
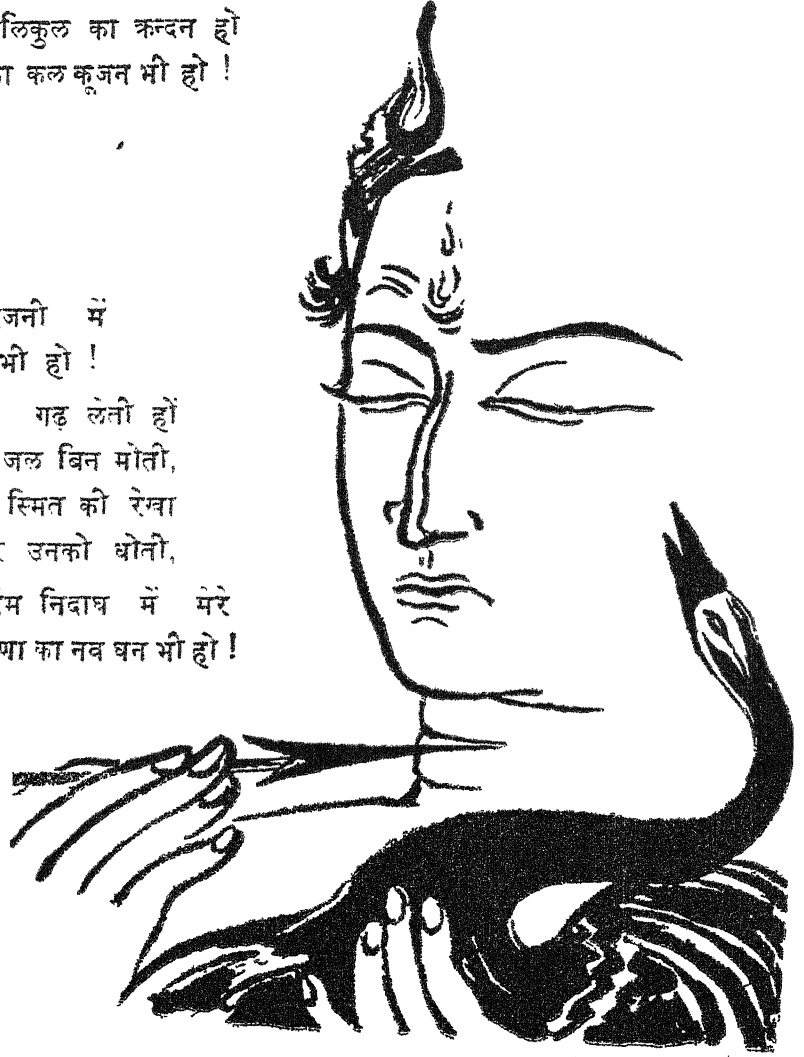
मुस्काता संकेत-भरा नभ
अलि क्या प्रिय आनेवाले हैं ?

विद्युत् के चल स्वर्णपाश में बँध हँस देता रोता जलधर;
अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतों से नहलाता सागर;

दिन निशि को, देती निशि दिन को
कनक-रजत के मधु-प्याले हैं !
अलि क्या प्रिय आनेवाले हैं ?

मोती बिखरातीं नूपुर के छिप तारक-परियाँ नर्तन कर;
हिमकण पर आता जाता—मलयानिल परिमल से अंजलि भर;

भ्रान्त पथिक से फिर फिर आते
विस्मित पल क्षण मनवाले हैं ?
अलि क्या प्रिय आनेवाले हैं ?

सघन वेदना के तम में, सुधि जाती सुख सोने के कण भर;
सुरधनु नव रचतीं निश्वासें, स्मित का इन भीगे अधरों पर;

आज आँसुओं के कोषों पर
स्वप्न बने पहरेवाले हैं !
अलि क्या प्रिय आनेवाले हैं ?

नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय आज हो रहे कैसी उलझन !
रोम रोम में होता री सखि एक नया उर का सा स्पन्दन !

पुलकों से भर फूल बन गये
जितने प्राणों के छाले हैं !
अलि क्या प्रिय आनेवाले हैं ?
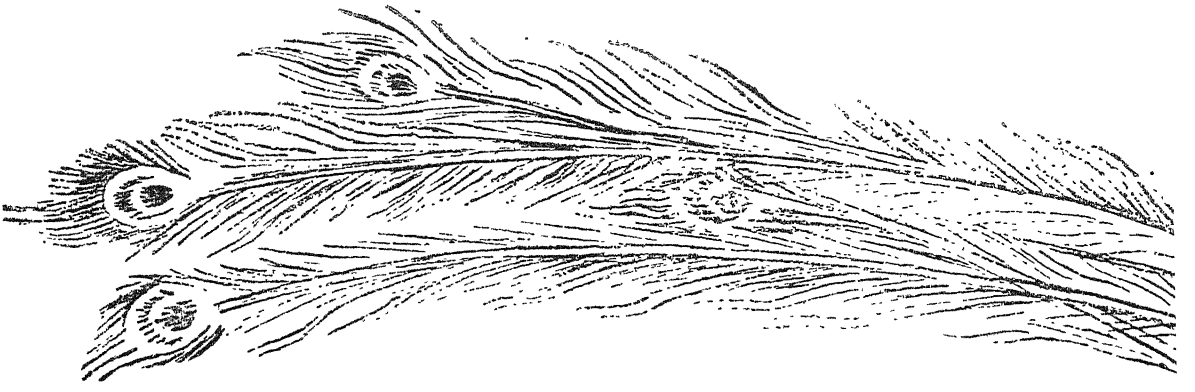
झरते नित लोचन मेरे हों !

जलती जो युग युग से उज्ज्वल,
आभा से रच रच मुक्ताहल,
वह तारक-माला उनकी,
चल विद्युत् के कंकण मेरे हों !
झरते नित लोचन मेरे हों !

ले ले तरल रजत औ' कंचन,
निशि-दिन ने लीपा जो आँगन,
वह सुषमामय नभ उनका,
पल पल मिटते नव घन मेरे हों !
झरते नित लोचन मेरे हों !

पद्मराग-कलियों से विकसित,
नीलम के अलियों से मुखरित,
चिर सुरभित नन्दन उनका,
यह अश्रु-भार-नत तृण मेरे हों !
झरते नित लोचन मेरे हों !

तम सा नीरव नभ सा विस्तृत;
हास रुदन से दूर अपरिचित;
वह सूनापन हो उनका,
यह सुखदुखमय स्पन्दन मेरे हों !
झरते नित लोचन मेरे हों !

जिसमें कसक न सुधि का दंशन,
प्रिय में मिट जाने के साधन,

वे निर्वाग—मुक्ति उनके,
जीवन के शत-बन्धन मेरे हों!

झरते नित लोचन मेरे हों!

बुद्बुद् में आवर्त्त अपरिमित,
कण में शत जीवन परिवर्तित,

हों चिर सृष्टि-प्रलय उनके,
बनने मिटने के क्षण मेरे हों!

झरते नित लोचन मेरे हों!

सस्मित पुलकित नित परिमलमय,
इन्द्रधनुष सा नवरंगोंमय,

अग जग उनका कण कण उनका,
पल भर वे निर्मम हों?

झरते नित लोचन मेरे हों!

लाये कौन सँदेश नये घन!

अम्बर गर्वित,
हो आया नत,
चिर निस्पन्द हृदय में उसके
उमड़े री पुलकों के सावन;
लाये कौन सँदेश नये घन

चौंकी निद्रित,
रजनी अलसित,
श्यामल पुलकित कम्पित कर में
दमक उठे विद्युत् के कंकण!
लाये कौन सँदेश नये घन!

दिशि का चंचल,
परिमल अंचल,

छिन्न हार से बिखर पड़े सखि !
जुगनू के लघु हीरक के कण !
लाये कौन सँदेश घन !

जड़ जग स्पन्दित,
निश्चल कम्पित,

फूट पड़े अवनी के संचित
सपने मृदुतम अंकुर बन बन !
लाये कौन सँदेश नये घन !

रोया चातक,
सकुचाया पिक,

मत्त मयूरों ने सूने में
झड़ियों का दुहराया नर्तन !
लाये कौन सँदेश नये घन !

सुख दुख से भर
आया लघु उर,

मोती से उजले जलकण से
छाये मेरे विस्मित लोचन !
लाये कौन सँदेश नये घन !

कहता जग दुख को प्यार न कर!

अनबींधे मोती यह दृग के,
बँध पाये बन्धन में किसके?

पल पल बनते पल पल मिटते,
तू निष्फल गुथ गुथ हार न कर!

कहता जग दुख को प्यार न कर!

किसने निज को खोकर पाया?
किसने पहचानी वह छाया?

तू भ्रम वह तम तेरा प्रियतम
आ सूने में अभिसार न कर!

कहता जग दुख को प्यार न कर!

यह मधुर कसक तेरे उर की,
कंचन की और न हीरक की;

मेरी स्मित से इसका विनिमय
कर ले या चल व्यापार न कर!

कहता जग दुख को प्यार न कर!

दर्पणमय है अणु अणु मेरा,
प्रतिबिम्बित रोम रोम तेरा;

अपनी प्रतिछाया से भोले!
इतनी अनुनय मनुहार न कर!

कहता जग दुख को प्यार न कर!

सुख-मधु में क्या दुख का मिश्रण!
दुख-विष में क्या सुख-मिश्री-कण!

जाना कलियों के देश तुझे
तो शूलों से शृङ्गार न कर!

कहता जग दुख को प्यार न कर!

मत अरुण घूँघट खोल री !

वृन्त बिन नभ में खिले जो,
अश्रु बरसाते हँसे जो,
तारकों के वे सुमन
मत चयन कर अनमोल री !

तरल सोने से धुलीं ये,
पद्मरागों से सजीं ये,
उलझ अलकें जायँगी
मत अनिल-पथ में डोल री !

निशि गई मोती सजाकर,
हाट फूलों में लगाकर,
लाज से गल जायँगे
मत पूछ इनसे मोल री !

स्वर्ण-कुमकुम में बसा कर,
है रँगी नव मेघ-चूनर,
बिछल मत धुल-जायगी
इन लहरियों में लोल री !

चाँदनी की सित सुधा भर,
बाँटता इनसे सुधाकर,
मत कली की प्यालियों में
लाल मदिरा घोल री !

पलक सीपें नींद का जल,
स्वप्नमुक्ता रच रहे, मिल,
हैं न विनिमय के लिए
स्मित से इन्हें मत तोल री !

खेल सुख-दुख से चपल थक,
सो गया जग-शिशु अचानक,
जाग मचलेगा न तू
कल खग-पिकों में बोल री !

जग करुण करुण, मैं मधुर मधुर!
दोनों मिल कर देते रजकण,
चिर करुण-मधुर सुन्दर सुन्दर!

जग पतझर का नीरव रसाल,
पहने हिमजल की अश्रुमाल,
मैं पिक बन गाती डाल डाल,
सुन फूट फूट उठते पल पल,
सुख-दुख-मंजरियों के अंकुर!

विस्मृति-शशि के हिम-किरण-बाण,
करते जीवन-सर मूकप्राण;
बन मलय-पवन चढ़ रश्मि-यान,
मैं आती ले मधु का संदेश,
भरने नीरव उर में मर्मर!

यह नियति-तिमिर-सागर अपार,
बुझते जिसमें तारक-अँगार;
मैं प्रथम रश्मि सी कर शृंगार,
आ अपनी छबि से ज्योतिर्मय,
कर देती उसकी लहर लहर!

युग से थी प्रिय की मूक बीन,
थे तार शिथिल कम्पनविहीन;
मैंने द्रुत उनकी नींद छीन,
सूनापन कर डाला क्षण में
नव झंकारों से करुणमधुर!
जग करुण करुण, मैं मधुर मधुर!

प्राणपिक [illegible] रे कह!

मैं मिटी निस्सीम प्रिय में,
वह गया बँध लघु हृदय में;
अब विरह की रात को तू
चिर मिलन का प्रात रे कह!

दुख-अतिथि का धो चरणतल,
विश्व रसमय कर रहा जल;
यह नहीं क्रन्दन हठीले!
सजल पावसमास रे कह!

ले गया जिसको लुभा दिन,
लौटती वह स्वप्न बन बन;
है न मेरी नींद, जागृति
का इसे उत्पात रे कह!

एक प्रिय-दृग-श्यामता सा,
दूसरा स्मित की विभा सा;
यह नहीं निशिदिन इन्हें
प्रिय का मधुर उपहार रे कह!

श्वास से स्पन्दन रहे झर,
लोचनों से रिस रहा उर;
दान क्या प्रिय ने दिया
निर्वाण का वरदान रे कह!

चल क्षणों का क्षणिक संचय,
बालुका से बिन्दु-परिचय;
कह न जीवन तू इसे
प्रिय का निठुर उपहार रे कह!

तुम दुख बन इस पथ से आना !

शूलों में नित मृदु पाटल सा,
खिलने देना मेरा जीवन;

क्या हार बनेगा वह जिसने
सीखा न हृदय को बिंधवाना !

वह सौरभ हूँ मैं जो उड़कर
कलिका में लौट नहीं पाता ;

पर कलिका के नाते ही प्रिय
जिसको जग ने सौरभ जाना !

नित जलना रहने दो तिल तिल,
अपनी ज्वाला में उर मेरा;

इसकी विभूति में, फिर आकर
अपने पद-चिह्न बना जाना !

वर देते हो तो कर दो ना,
चिर आँखमिचौनी यह अपनी;

जीवन में खोज तुम्हारी है
मिटना ही तुमको छू पाना !

प्रिय! तेरे उर में जग जावे,
प्रतिध्वनि जब मेरे पी पी की;

उसको जग समझे बादल में
विद्युत् का बन बन मिट जाना!

तुम चुपके से आ बस जाओ,
सुख-दुख सपनों में श्वासों में;

पर मन कह देगा 'यह वे हैं'
आँखें कह देंगी 'पहचाना'!

जड़ जग के अणुओं में स्मित से,
तुमने प्रिय जब डाला जीवन,

मेरी आँखों ने सींच उन्हें
सिखलाया हँसना खिल जाना!

कुहरा जैसे घन आतप में,
यह संसृति मुझमें लय होगी;

अपने रागों से लघु वीणा
मेरी मत आज जगा जाना!

तुम दुख बन इस पथ से आना!

अलि वरदान मेरे नयन!

उमड़ता भव-अतलसागर,
लहर लेते सुखसरोवर;
चाहते पर अश्रु का लघु
बिन्दु प्यासे नयन!
प्रिय घनश्याम चातक नयन!

पी उजाला तिमिर पल में,
फेंकता रविपात्र जल में,
तब पिलाते स्नेह अणु अणु-
को छलकते नयन!
दुख-मद के चषक यह नयन!

छू अरुण का किरण-चामर,
बुझ गये नभ-दीप निर्भर;
जल रहे अविराम पथ में
किन्तु निश्चल नयन!
तममय विरह दीपक नयन!

उलझते नित बुद्बुदे शत,
घेरते आवर्त्त आ द्रुत;
पर न रहता लेश, प्रिय की
स्मित रँगे यह नयन!
जीवन-सरित-सरसिज नयन!

मैं मिटूँ ज्यों मिट गया घन,
उर मिटे ज्यों तड़ित्-कम्पन;
फूट कण कण से प्रकट हों
किन्तु अगणित नयन!
प्रिय के स्नेह-अंकुर नयन!

अलि वरदान मेरे नयन!
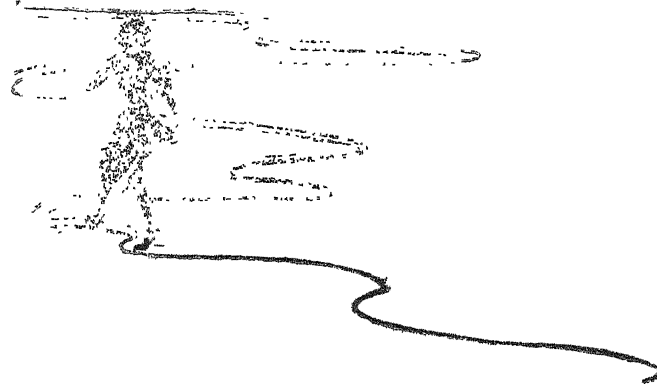
दूर घर मैं पथ से अनजान !

मेरी ही चितवन से उमड़ा तम का पारावार;
मेरी आशा के नव अंकुर शूलों में साकार;
पुलिन सिकतामय मेरे प्राण !

मेरे निश्वासों से बहती रहती झंझावात;
आँसू में दिनरात प्रलय के घन करते उत्पात;
कसक में विद्युत् अन्तर्धान !

मेरी ही प्रतिध्वनि करती पल पल मेरा उपहास;
मेरी पदध्वनि में होता नित औरों का आभास;
नहीं मुझसे मेरी पहचान !

दुख में जाग उठा अपनेपन का सोता संसार;
सुख में सोई री प्रिय-सुधि की अस्फुट सी झंकार;
हो गए सुख दुख एक समान !

बिन्दु बिन्दु ढुलने से भरता उर में सिन्धु महान;
तिल तिल मिटने से होता है चिर जीवन निर्माण;
न सुलझी यह उलझन नादान !

पल पल के झरने से बनता युग का अद्भुत हार;
श्वास श्वास खोकर जग करता नित दिव से व्यापार;
यही अभिशाप यही वरदान !

इस पथ का कण कण आकर्षण, तृण तृण में अपनाव;
उसमें मूक पहेली है पर इसमें अमिट दुराव;
हृदय को बन्धन में अभिमान !

दूर घर मैं पथ से अनजान !
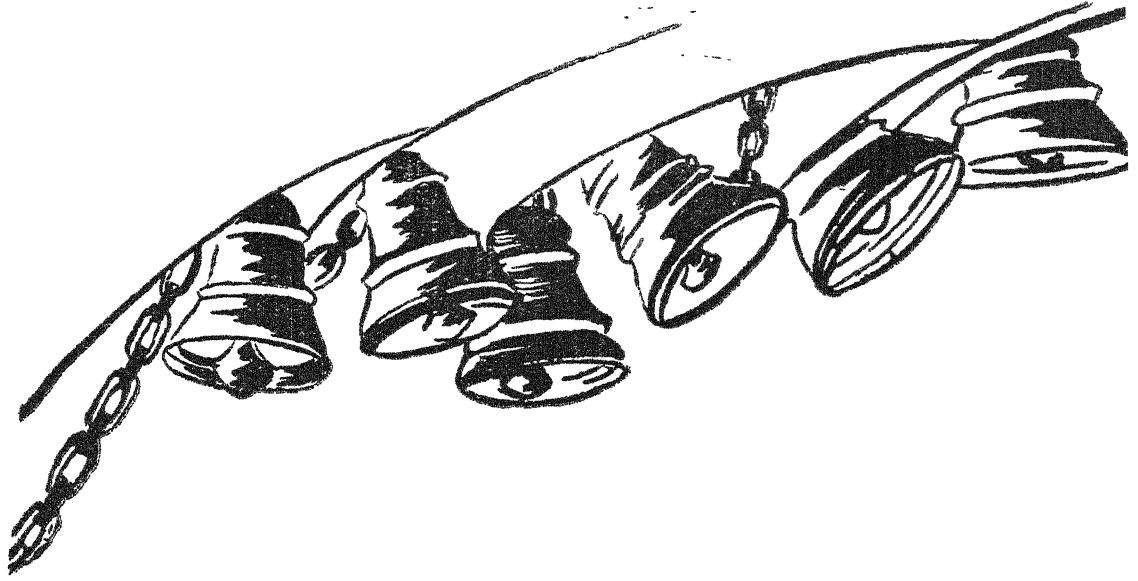
क्या पूजन क्या अर्चन रे ?

उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे !

पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जल-कण रे !
अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे !

स्नेहभरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक-मन रे !
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे !

धूप बने उड़ते जाते हैं प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे !
प्रिय प्रिय जपते अधर, ताल देता पलकों का नर्तन रे
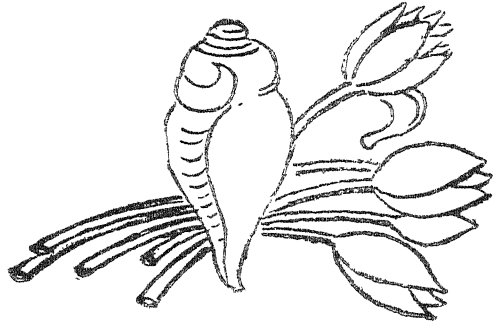
प्रिय सुधि भूले री मैं पथ भूली !

मेरे ही मृदु उर में हँस बस,
श्वासों में भर मादक मधु-रस,
लघु कलिका के चल परिमल से
वे नभ छाये री मैं वन फूली !

प्रिय सुधि भूले री मैं पथ भूली !

तज उनका गिरि सा गुरु अन्तर,
मैं सिकता-कण सी आई झर;
आज सजनि उनसे परिचय क्या !
वे घनचुम्बित मैं पथ-धूली !

प्रिय सुधि भूले री मैं पथ भूली !

उनकी वीणा की नव कम्पन,
डाल गई री मुझ में जीवन;
खोज न पाई उसका पथ मैं
प्रतिध्वनि सी सूने में भूली !

प्रिय सुधि भूले री मैं पथ भूली !

जाग बेसुध जाग !

अश्रुकण से उर सजाया त्याग हीरक-हार,
भीख दुख की माँगने फिर जो गया प्रतिद्वार;
शूल जिसने फूल छू चन्दन किया, सन्ताप,
सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पद-चाप;

करुणा के दुलारे जाग !

शङ्ख में ले नाश मुरली में छिपा वरदान,
दृष्टि में जीवन अधर में सृष्टि ले छबिमान,
आ रचा जिसने स्वरों में प्यार का संसार,
गूँजती प्रतिध्वनि उसी की फिर क्षितिज के पार;

वृन्दाविपिनवाले जाग !

× × ×

रात के पथहीन तम में मधुर जिसके श्वास,
फैल भरते लघु कणों में भी असीम सुवास,
कंटकों की सेज जिसकी आँसुओं का ताज,
सुभग ! हँस उठ, उस प्रफुल्ल गुलाब ही सा आज,

बीती रजनि प्यारे जाग !
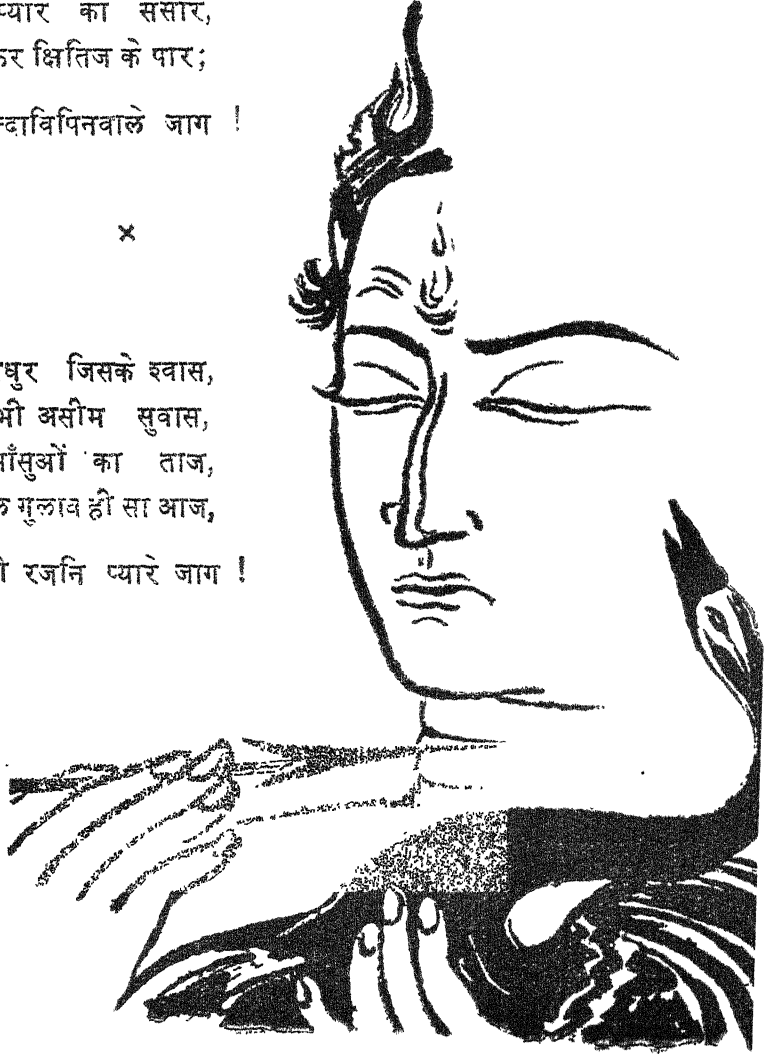
लय गीत मदिर, गति ताल अमर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

आलोक-तिमिर सित-असित चीर,
सागर-गर्जन रुनझुन मँजीर;

उड़ता झंझा में अलक-जाल,
मेघों में मुखरित किंकिणि-स्वर !

अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

रवि-शशि तेरे अवतंस लोल,
सीमन्त-जटित तारक अमोल;

चपला विभ्रम, स्मित इन्द्रधनुष,
हिमकण बन झरते स्वेद-निकर !
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

युग हैं पलकों का उन्मीलन,
स्पन्दन में अगणित लय-जीवन;
तेरी श्वासों में नाच नाच
उठता बेसुध जग सचराचर !
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

तेरी प्रतिध्वनि बनती मधुदिन,
तेरी समीपता पावस-क्षण;
रूपसि ! छूते ही तुझमें मिट,
जड़ पा लेता वरदान अमर !
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

जड़ कण कण के प्याले झलमल,
छलकी जीवन-मदिरा छलछल;
पीती थक झुक झुक झूम झूम;
तू घूँट घूँट फेनिल सीकर!

अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर!

बिखराती जाती तू सहास,
नव तन्मयता उल्लास लास;
हर अणु कहता उपहार बनूँ
पहले छू लूँ जो मृदुल अधर!

अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर!

हे सृष्टि-प्रलय के आलिङ्गन!
सीमा-असीम के मूक मिलन!
कहता है तुझको कौन घोर,
तू चिर रहस्यमयि कोमलतर!

अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर!

तेरे हित जलते दीप-प्राण,
खिलते प्रसून हँसते विहान;
श्यामाङ्गिनि! तेरे कौतुक को
बनता जग मिट मिट सुन्दरतर!

प्रिय-प्रेयसि! तेरा लास अमर!

उर तिमिरमय घर तिमिरमय
चल सजनि दीपक बार ले !

राह में रो रो गये हैं
रात और विहान तेरे,
काँच से टूटे पड़े यह
स्वप्न, भूलें, मान तेरे;
फूलप्रिय पथ शूलमय
पलकें बिछा सुकुमार ले !

तृषित जीवन में घिरे घन—
बन, उड़े जो श्वास उर से,
पलक-सीपी में हुए मुक्ता
सुकोमल और बरसे;
मिट रहे नित धूलि में
तू गूँथ इनका हार ले !

मिलनवेला में अलस तू
सो गई कुछ जाग कर जब,
फिर गया वह, स्वप्न में
मुस्कान अपनी आँक कर तब !
आ रही प्रतिध्वनि वही फिर
नींद का उपहार ले !
चल सजनि दीपक बार ले !
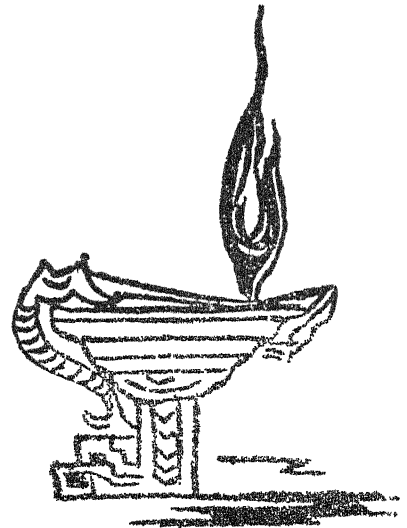
तुम सो जाओ मैं गाऊँ !

मुझको सोते युग बीते,
तुमको यों लोरी गाते;
अब आओ मैं पलकों में
स्वप्नों से सेज बिछाऊँ !

प्रिय ! तेरे नभमन्दिर के
मणिदीपक बुझ बुझ जाते;
जिनका कण कण विद्युत् है
मैं ऐसे प्राण जलाऊँ !

क्यों जीवन के शूलों में
प्रतिक्षण आते जाते हो ?
ठहरो सुकुमार ! गला कर
मोती पथ में फैलाऊँ !

पथ की रज में है अंकित,
तेरे पदचिह्न अपरिचित;
मैं क्यों न इसे अंजन कर
आँखों में आज बसाऊँ !

जल सौरभ फैलाता उर,
तब स्मृति जलती है तेरी;
लोचन कर पानी पानी
मैं क्यों न उसे सिंचवाऊँ !

इन भूलों में मिल जातीं,
कलियाँ तेरी माला की;
मैं क्यों न इन्हीं काँटों का
संचय जग को दे जाऊँ ?

अपनी असीमता देखो,
लघु दर्पण में पल भर तुम;
मैं क्यों न यहाँ क्षण क्षण को
धो धो कर मुकुर बनाऊँ !

हँसने में छू जाते तुम,
रोने में वह सुधि आती;
मैं क्यों न जगा अणु-अणु को
हँसना रोना सिखलाऊँ !
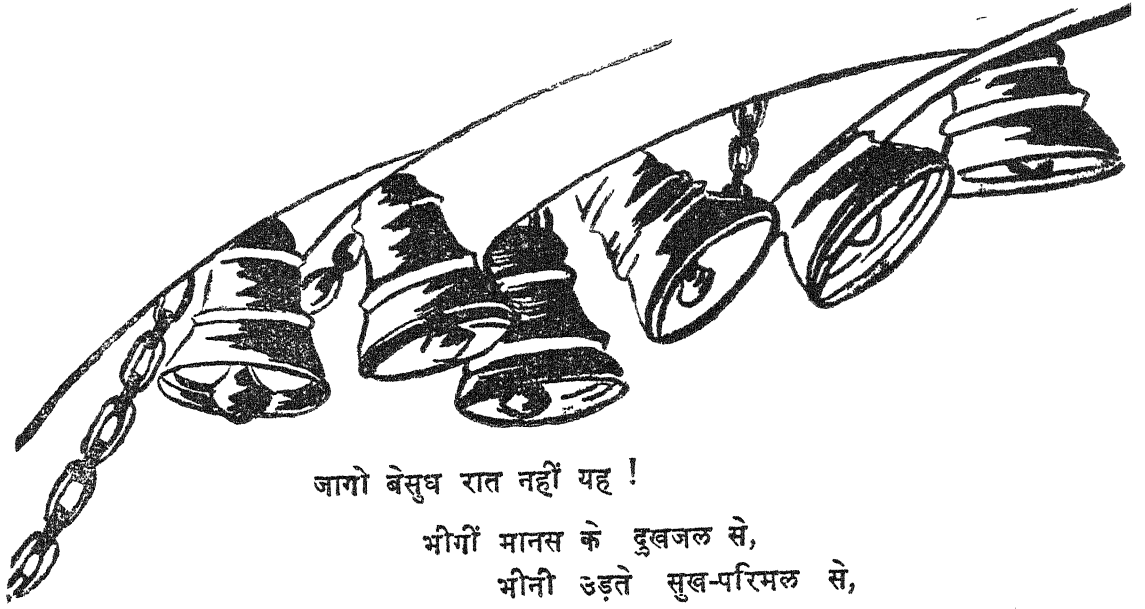
जागो बेसुध रात नहीं यह !

भीगीं मानस के दुखजल से,
भीनी उड़ते सुख-परिमल से,

हैं बिखरे उर की निश्वासें,
मादक मलय-वतास नहीं यह !

पारद के मोती से चंचल,
मिटते जो प्रतिपल बन ढुलढुल,

हैं पलकों में करुणा के अणु,
पाटल पर हिमहास नहीं यह !

कूलहीन तम के अन्तर में,
दमक गईं छिप जो क्षण भर में,

हैं विषाद में बिखरी स्मृतियाँ,
घन-चपला का लास नहीं यह !

श्रमकण में ले, ढुलते हीरक,
अंचल से ढक आशा-दीपक

तुम्हें जगाने आई पीड़ा,
स्वप्नों का परिहास नहीं यह !

केवल जीवन का क्षण मेरे !
फिर क्यों प्रिय मुझको अग जग-
का प्यासा कण कण घेरे !

नत घन-विद्युत् माँग रहे पल,
अम्बर फैलाये नित अंचल;
उसको माँग रहे हँस
रोकर कितने रात सबेरे !

कलियाँ रोती हैं सौरभ भर,
निर्झर मानस आँसूमय कर,
इस क्षण के हित मत्त समीरण
करता शत शत फेरे !

तारे बुझते हैं जल निशिभर,
स्नेह नया लाते भर फिर फिर,
सागर की लहरों लहरों में
करती प्यास बसेरे !

लुटता इस पर मधुमद परिमल,
झर जाते गल कर मुक्ताहल,
किसको दूँ किसको लौटाऊँ,
लघु पल ही घन मेरे !

प्रिय ! सान्ध्य गगन
मेरा जीवन !

यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधिभीने स्वप्न रँगीले घन !

साधों का आज सुनहलापन,
घिरता विषाद का तिमिर सघन,
सन्ध्या का नभ से मूक मिलन—
यह अश्रुमती हँसती चितवन !

लाता भर श्वासों का समीर,
जग से स्मृतियों का गन्ध धीर,
सुरभित हैं जीवन-मृत्यु-तीर,
रोमों में पुलकित कैरव-वन !

अब आदि अन्त दोनों मिलते,
रजनी-दिन-परिणय से खिलते,
आँसू मिस हिम के कण ढुलते,
ध्रुव आज बना स्मृति का चल क्षण !

इच्छाओं के सोने से शर,
किरणों से द्रुत झीने सुन्दर,
सूने असीम नभ में चुभकर—
बन बन आते नक्षत्र-सुमन !

घर आज चले सुख-दुःख-विहग,
तम पोंछ रहा मेरा अग जग,
छिप आज चला वह चित्रित मग,
उतरो अब पलकों में पाहुन !
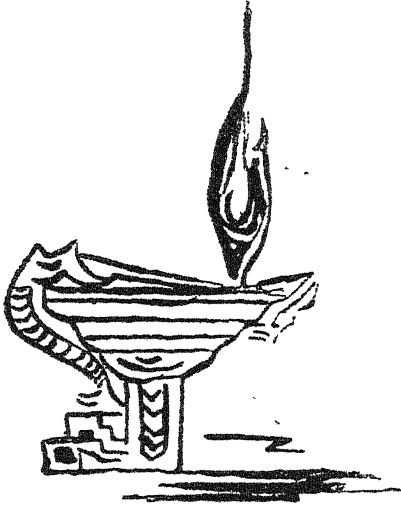
प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती !

श्वासों में सपने कर गुम्फित,
बन्दनवार वेदना - चर्चित,
भर दुख से जीवन का घट नित,
मूक क्षणों में मधुर भरूँगी भारती !

दृग मेरे यह दीपक झिलमिल,
भर आँसू का स्नेह रहा ढुल,
सुधि तेरी अविराम रही जल,
पद-ध्वनि पर आलोक रहूँगी वारती !

यह लो प्रिय ! निधियोंमय जीवन,
जग की अक्षय स्मृतियों का धन,
सुख - सोना करुणा - हीरक - कण,
तुमसे जीता आज तुम्हीं को हारती !
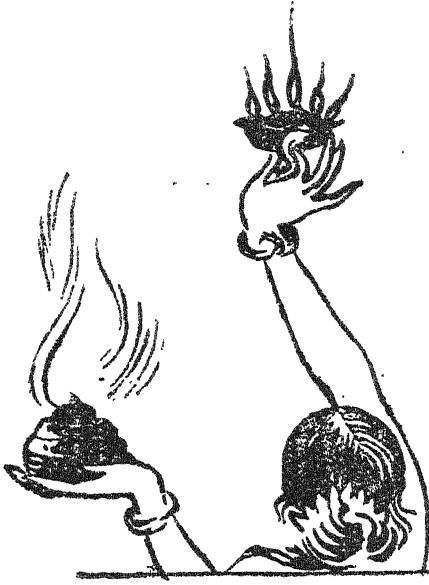
क्या न तुमने दीप बाला ?

क्या न इसके शीत अधरों—
से लगाई अमर ज्वाला ?

अगम निशि है यह अकेला,
तुहिन-पतझर-वात-बेला,
उन करों की सजल सुधि में
पहनता अङ्गार-माला !

स्नेह माँगा औ' न बाती,
नींद कब, कब क्लान्ति भाती !
वर इसे दो एक कह दो
मिलन के क्षण का उजाला !

झर इसी से अग्नि के कण,
बन रहे हैं वेदना-घन,
प्राण में इसने विरह का
मोम सा मृदु शलभ पाला !

यह जला निज धूम पीकर,
जीत डाली मृत्यु जी कर,
रत्न सा तम में तुम्हारा
अंक मृदु पद का सँभाला !

यह न झंझा से बुझेगा,
बन मिटेगा मिट बनेगा,
भय इसे है हो न जावे
प्रिय तुम्हारा पंथ काला !

रागभीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रँगीले !

लोचनों में क्या मदिर नव ?
देख जिसको नीड़ की सुधि फूट निकली बन मधुर रव !

झूलते चितवन गुलाबी—
में चले घर खग हठीले !
रागभीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रँगीले !

छोड़ किस पाताल का पुर ?
राग से बेसुध, चपल सपने सजीले नयन में भर,

रात नभ के फूल लाई,
आँसुओं से कर सजीले !
रागभीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रँगीले !
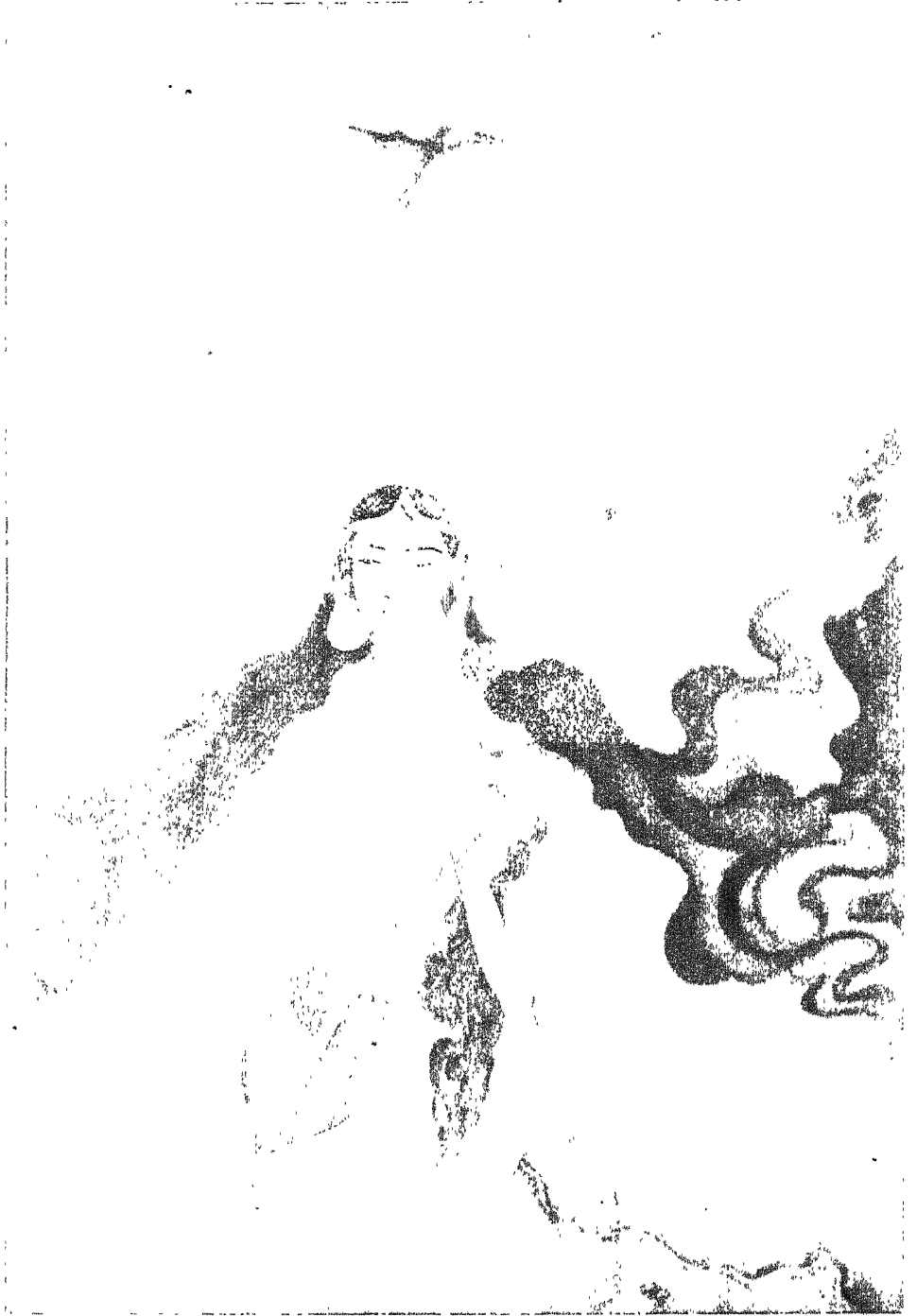
मिलन

आज इन तन्द्रिल पलों में !
उलझती अलकें सुनहली असित निशि के कुन्तलों में !

सजनि नीलमरज भरे
रँग चूनरी के अरुण पीले !
रागभीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रँगीले !

रख सी लघु तिमिर लहरी,
चरण छू तेरे हुई है सिन्धु सीमाहीन गहरी !

गीत तेरे पार जाते
बादलों की मृदु तरी ले !
रागभीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रँगीले !

कौन छायालोक की स्मृति,
कर रही रङ्गीन प्रिय के द्रुत पदों की अंक-संसृति,

सिहरती पलकें किये—
देतीं विहँसते अधर गीले !
रागभीनी त सजनि निश्वास भी तेरे रँगीले !
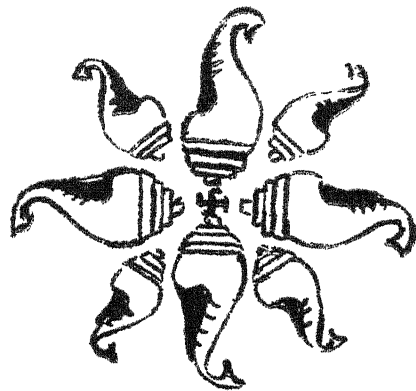
अश्रु मेरे माँगने जब
नींद में वह पास आया !

स्वप्न सा हँस पास आया !

हो गया दिव की हँसी से
शून्य में सुरचाप अंकित;
रश्मि-रोमों में हुआ
निस्पन्द तम भी सिहर पुलकित;

अनुसरण करता अमा का
चाँदनी का हास आया !

वेदना का अग्निकण जब
मोम से उर में गया बस,
मृत्यु-अंजलि में दिया भर
विश्व ने जीवन-सुधा-रस !

माँगने पतझार से
हिम-बिन्दु तब मधुमास आया !

अमर सुरभित साँस देकर,
मिट गये कोमल कुसुम झर;
रविकरों में जल हुए फिर,
जलद में साकार सीकर;

अंक में तब नाश को
लेने अनन्त विकास आया !

क्यों वह प्रिय आता पार नहीं ?

शशि के दर्पण में देख देख,
मैंने सुलझाये तिमिर-केश;
गूँथे चुन तारक-पारिजात,
अवगुण्ठन कर किरणें अशेष;

क्यों आज रिझा पाया उसको
मेरा अभिनव शृङ्गार नहीं ?

स्मित से कर फीके अधर अरुण,
गति के जावक से चरण लाल,
स्वप्नों से गीली पलक आँज,
सीमन्त सजा ली अश्रु-माल;

स्पन्दन मिस प्रतिपल भेज रही
क्या युग युग से मनुहार नहीं ?

मैं आज चुपा आई चातक,
मैं आज सुला आई कोकिल;
कण्टकित मौलश्री हरसिंगार,
रोके हैं अपने श्वास शिथिल !

सोया समीर नीरव जग पर
स्मृतियों का भी मृदु भार नहीं !

रूँधे हैं, सिहरा सा दिगन्त,
नत पाटलदल से मृदु बादल;
उस पार रुका आलोक-यान,
इस पार प्राण का कोलाहल !

बेसुध निद्रा है आज बुने—
जाते श्वासों के तार नहीं !

दिन-रात पथिक थक गए लौट,
फिर गए मना कर निमिष हार;
पाथेय मुझे सुधि मधुर एक,
है विरह पन्थ सूना अपार !

फिर कौन कह रहा है सूना
अब तक मेरा अभिसार नहीं ?

जाने किस जीवन की सुधि ले
लहराती आती मधु-बयार !

रंजित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मण्डन को आज मधुर ला रजनीगन्धा का पराग,

यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कबरी सँवार !

पाटल के सुरभित रंगों से रँग दे हिम सा उज्ज्वल दुकूल;
गुथ दे रशना में अलि-गुंजन से पूरित झरते बकुल-फूल;

रजनी से अंजन माँग सजनि
दे मेरे अलसित नयन सार !

तारक-लोचन से सींच-सींच नभ करता रज को विरज आज;
बरसाता पथ में हरसिंगार केशर से चर्चित सुमन-लाज;

कण्टकित रसालों पर उठता—
है पागल पिक मुझको पुकार !
लहराती आती मधु-बयार !

शून्य मन्दिर में बनूंगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी !

अर्चना हों शूल भोले,
क्षार दृग-जल अर्घ्य हो ले,

आज करुणा-स्नात उजला
दुःख हो मेरा पुजारी !

नूपुरों का मूक छूना,
सरव कर दे विश्व सूना,

यह अगम आकाश उतरे
कम्पनों का हो भिखारी !

लोल तारक भी अचंचल,
चल न मेरा एक कुन्तल,

अचल रोमों में समाई
मुग्ध हो गति आज सारी !

राग मद की दूर लाली,
साध भी इसमें न पाली,

शून्य चितवन में बसेगी
मूक हो गाथा तुम्हारी !

प्रिय-पथ के यह शूल मुझे अति प्यारे ही हैं !

हीरक सी वह याद
बनेगा जीवन सोना,
जल जल तप तप किन्तु
खरा इसको है होना !

चल ज्वाला के देश जहाँ अङ्गारे ही हैं
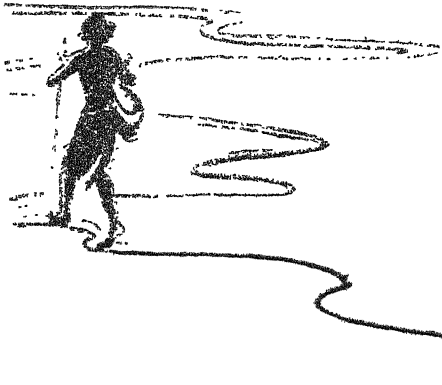
तम-तमाल ने फूल
गिरा दिन पलकें खोलीं
मैंने दुख में प्रथम
तभी सुख-मिश्री घोली !

ठहरें पल भर देव अश्रु यह खारे ही हैं !

ओढ़े मेरी छाँह
रात देती उजियाला,
रजकण मृदु-पद चूम
हुए मुकुलों की माला !

मेरा चिर इतिहास चमकते तारे ही हैं !

आकुलता ही आज
हो गई तन्मय राधा,
विरह बना आराध्य
द्वैत क्या कैसी बाधा !

खोना पाना हुआ जीत वे हारे ही हैं !

मेरा सजल मुख देख लेते!
यह करुण मुख देख लेते!

सेतु शूलों का बना बाँधा विरह-वारीश का जल,
फूल सी पलकें बनाकर प्यालियाँ बाँटा हलाहल,

दुःखमय सुख
सुख भरा दुख,
कौन लेता पूछ जो तुम
ज्वाल-जल का देश देते

नयन की नीलम तुला पर मोतियों से प्यार तोला,
कर रहा व्यापार कब से मृत्यु से यह प्राण भोला,

भ्रान्तिमय कण,
श्रान्तिमय क्षण,
थे मुझे वरदान जो तुम
माँग ममता शेष लेते!

पद चले जीवन चला पलकें चलीं स्पन्दन ही चल,
किन्तु चलता जा रहा मेरा क्षितिज भी दूर धूमिल,

अङ्ग अलसित,
प्राण विजड़ित,
मानती जय जो तुम्हीं
हँस हार आज अनेक देते !

घुल गई इन आँसुओं में देव जाने कौन हाला,
झूमता है विश्व पी पी घूमती नक्षत्र-माला,

साध है तुम
बन सघन तम,
सुरँग अवगुण्ठन उठा
गिन आँसुओं की रेख लेते !

शिथिल चरणों के थकित इन नूपुरों की करुण रुनझुन,
विरह का इतिहास कहती जो कभी पाते सुभग सुन,

चपल पद धर
आ अचल उर !
वार देते मुक्ति, खो
निर्वाण का सन्देश देते !
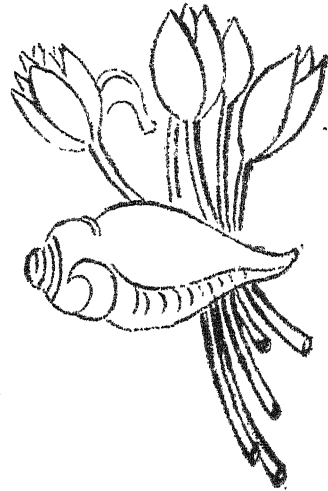
रे पपीहे पी कहाँ ?

खोजता तू इस क्षितिज से उस क्षितिज तक शून्य अम्बर,
लघु परों से नाप सागर;

नाप पाता प्राण मेरे
प्रिय समा कर भी कहाँ ?

हँस डुबा देगा युगों की प्यास का संसार भर तू,
कण्ठगत लघु विन्दु कर तू !

प्यास ही जीवन, सकूँगी
तृप्ति में मैं जी कहाँ ?

चपल बन बन कर मिटेगी झूम तेरी मेघ-माला !
मैं स्वयं जल और ज्वाला !

दीप सी जलती न तो यह
सजलता रहती कहाँ ?

साथ गति के भर रही हूँ विरति या आसक्ति के स्वर,
मैं बनी प्रिय-चरण-नूपुर !

प्रिय बसा उर में सुभग !
सुधि खोज की बसती कहाँ ?

विरह की घड़ियाँ हुईं अलि मधुर मधु की यामिनी सी !

दूर के नक्षत्र लगते पुतलियों से पास प्रियतर,
शून्य नभ की मूकता में गूंजता आह्वान का स्वर,

आज है निःसीमता
लघु प्राण की अनुगामिनी सी !

एक स्पन्दन कह रहा है अकथ युग युग की कहानी;
हो गया स्मित से मधुर इन लोचनों का क्षार पानी;

मूक प्रतिनिश्वास है
नव स्वप्न की अनुरागिनी सी !

सजनि ! अन्तर्हित हुआ है 'आज' में धुँधला विफल 'कल'
हो गया है मिलन एकाकार मेरे विरह में मिल;

राह मेरी देखती
स्मृति अब निराश पुजारिनी सी !

फैलते हैं सान्ध्य नभ में भाव ही मेरे रँगीले;
तिमिर की दीपावली हैं रोम मेरे पुलक-गीले;

बन्दिनी बनकर हुई
मैं बन्धनों की स्वामिनी सी !

नीहार

[प्रथम याम]

विषय				पृष्ठ

रश्मि

[द्वितीय याम]

नीरजा

[तृतीय याम]

विषय				पृष्ठ

सान्ध्य-गीत

[चतुर्थ याम]

विषय	पृष्ठ